YAKṢASAMĀGAMA

(An erotic lyric-poetry)

BY

M. M. PARAMESHWAR JHĀ



यक्षसमागमम्



BHAVANATH JHA

म० म० परमेश्वर झा विरचितम्

यक्षसमागमम्

(शृङ्गारिकगीतिकाव्यम्)

स्वोपज्ञटिप्पणसंवलितम्

संस्कृत हिन्दी व्याख्याकारः

भवनाथ झा

एम० ए०, साहित्याचार्य

1996

YAKSAMAGAMA. An erotic lyric poetry indebted to Meghdoot, Composed by M.M. PARAMESWAR JHA edited by BHAVANATH JHA

Published by—

Pt. Sri Amarnath Jha

Vi+P.o.–Hatar Rupouli

Jhanjharpur

Madhubani

Price—Rs. 20/–

Printed by

Janhit Press,

Rambagh Road

Muzaffarpur

निवेदनम्

मिथिलामहीमण्डनस्य कर्मकाण्डोद्धारकस्य वैयाकरण केसरिणः महामहोपाध्यायस्य परमेश्वरशर्मणः काव्यकृतिमिमांलघ्वीं यक्षसमागमनाम्नीं चिरादनुपलब्धां परमैतिहासिकैः वाचस्पति गैरोलाप्रभृतिभिः भृशं चर्चितां भवतां विद्याधनानाङ्करकमलयोः प्रस्तुवतोममाद्य मोमुद्यते चेतः।

श्री मदिमः शशिनाथ झा महाभागैः टीकाकरणे प्रेरितः समुत्साहितः निर्देशितश्च सम्प्रतितान् प्रत्यवनतोस्मि। तान् प्रति वैखर्या धन्यवादज्ञापनेऽपि जिह्वा जिह्मेति मे जल्पन्ती।

यस्यच तातपादस्य प० श्री अमरनाथशर्म्मणोऽङ्के कदाचिदुपविष्टेनमया "अमता निल्जलादेआ" इति अस्फुटमपि रटितम्, अधुनाऽपि जरातुरस्य तस्य शयनीये तेषामनुशासनङ्क्रियते, टीकाकरणेस्मिन् व्युत्पति परिज्ञानञ्च तस्माधीतम् अतोऽत्र समवायिकारणत्वेन महत्वं तातपादस्यावगम्यते मया। एवमेवाग्रजेभ्यः प० श्री शम्भुनाथ झा महाभागेभ्योऽपि अक्षरज्ञानमारभ्य काव्यानुशासनं यावदध्ययनङ्कुर्वन् तच्छत्रछायायामर्थागम विरहितोऽपि अध्ययनादविचलः कार्येस्मिन् सफलीभूतः। अपिच, तेषाङ्काव्यमर्मज्ञानां विचारसरणिः पथनिर्देशिकाऽस्ति सञ्जाता, तच्चरणकमलयोः प्रणाममेव प्रस्फुरति चेतसि सम्प्रति।

मिथिलातत्वविमर्शाख्येतिहास ग्रन्थस्य द्वितीय संस्करणसम्पादकमहाभागान् प० श्री गोविन्द झा महोदयान् प्रति प्रणामपुरस्सरं कृतज्ञताम्प्रकटी करोमि यैरुद्घाटितान्वितिमयी सूचना भूमिकायामस्य कवेः परिचयप्रदानावसरे मयाऽपि सन्निवेशिता। अपिच, तेषाम् शिष्यवत्सलानामज्ञानावरुद्धनयनोन्मीलनसमर्थामल्पीयसीमपि स्नेहभरितां मौखिकींवाचस्मृत्वाऽत्मगौरवान्वितोऽस्मि।

सम्पादने चास्य दरभङ्गा राजपुस्तकालयाध्यक्षः श्री पुष्टिनाथ झा महाभागोऽपि अविस्मरणीयः भृशंधन्यवादार्हः येन काव्यस्यास्य जीर्णा शीर्णाऽपि मुद्रिता मातृका प्रतिलिपिकरणार्थमुपलब्धीकारिता।

टीकायामस्यां भविष्यन्ति चेदनेके प्रमादाः। ते ममैव दोषाः। मम प्रथम प्रयासं मत्वा क्षमाशीलाः विद्याचणाः दोषानुद्घाट्य मां सनाथीकरिष्यन्तीत्यवगम्य धृतोत्साहः भवताङ्कर कमलयोरर्पयामीत्यल विदुषां समक्षे।

मुजफ्फरपुर
५ अप्रैल, ६६

भावत्कः
भवनाथः

शुभाशंसनम्

डा० शशिनाथ झा, विद्यावारिधि
व्या० सा० आचार्य, एम० ए०
विद्या वारिधि, विद्यावाचस्पति
प्रधानाचार्य
ज० ना० ब्र० आदर्श संस्कृत महाविद्यालय
(भारत-सर्वकारीय संस्था)
लगमा लोहना रोड
दरभंगा (बिहार)

महाकविकालिदासचर्चितोधनाध्यक्षानुचरोयक्ष: चिरपरिचित एव सर्वेषाम् शापेनास्तङ्गमितमहिमा। तद्वियोगोऽपि चिरादनुप्रयोगायते तदनुवर्तिभि: प्रतिभारविभि: कविभि:। कालिदाससमयादेव विरहज्वालायां रसिकशालायां सहस्त्रद्वयवर्षावधि सामर्षं प्रतिवर्षं मेघगाश्लिष्ट सानु धरणिनिहित जानुर्दयिताजीवितालम्बनार्थी दौत्यप्रार्थी स कुबेरानुचर: समर्चयति स्म। परं न कोपि देवो न वा कोपि कविरेव तद्विरहापाकरणाय बिचारमप्यकार्षीत् !

अहह ! सर्व: कालवशेन सिद्धत्येव। गतशताब्दान्ते कदाचिदुत्थिते शार्ङ्गपाणौ यक्षस्य तस्य शपान्तोऽभूदेव। तत्र भवता मैथिलमनीषिणा दरभङ्गाराजकीयप्रधानपण्डितेन महामहोपाध्यायेन परमेश्वरझा शर्म्मणा यक्षसमागम नामकं काव्यरत्न सयत्नं विरच्य यक्षस्य विरहज्वालामाला प्रशमिता। कालिदासेन मेघदूतद्वारा यद्यदाश्वासनमलकां प्रति प्रेषितं तत्तस्य सर्वस्य परिपूर्तिरत्र तच्छैल्येव सम्पादिता। वस्तुतोऽनेन काव्येनैव मेघदूतस्य परिपूर्णता जायते। पद्यबन्धादि योजनं साक्षात् कालिदासीयमिवेति प्रयोजन हि काव्यस्यास्यसकलकाव्यजिज्ञासूनी रसैकत्रमूनाम्।

प्रथम संस्करणानन्तरमेतन्मुद्रापणं चिरान्नैव जातमिति दुर्लभस्यास्य काव्यरत्नस्य व्याख्याविहीनस्य संस्कृत-हिन्दी भाषयो: नव्यां भव्यां प्रकटित गूढभावां बोधोपयोगिप्रभावां पदच्छेद-व्याकृति-व्युत्पत्ति-भावादिबोधिकां, प्रसङ्गशोधिकां व्याख्यां निर्माय नवीनो बुध: श्री भवनाथ झा शर्म्मा समेषां रसिकानां स्नेह भाजनम्। मैथिलीभाषामये कथा साहित्ये बहुविधसेवापरिचितस्यास्य भवनाथस्यैषा सुरभारतीसेवाऽपि सर्वथा स्मरणीया भविष्यति विदुषाम्। आशास्ति यदय प्रस्तुत-व्याख्या प्रचारेण समुत्साहित: संस्कृत सेवायामेव प्रयासरतो भूयात्तराम् नितराम्।

१—६—१९९४ शशिनाथ झा

—भूमिका—

म० म० परमेश्वर झा व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रस्तुत काव्य यक्षसमागम के कवि कर्मकाण्डोद्धारक–महामहोपाध्याय–वैयाकरण केसरी-महोपदेशक-विद्यानिधि **परमेश्वर** झा १९वीं शताब्दी के अन्तिम भाग में मिथिला के प्रकाण्ड पण्डित हुए। इनका जन्म दरभङ्गा जिला के अन्तर्गत तरौनी (तरुवनी) नामक ग्राम में २७ दिसम्बर १८५६ ई० में हुआ। यह ग्राम पूर्वोत्तर रेलबे खण्ड के सकरी जक्शन से लगभग ८ कि० मी० दक्षिण दिशा में अवस्थित है।

मिथिला की पञ्जी व्यवस्था के अनुसार **परमेश्वर** झा वलियासे सकुरी मूल के काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके कुल के उपर सरस्वती और लक्ष्मी दोनों की कृपा रही। 'कुसुम कलिका' नामक आख्यायिका में कवि ने म०म० पशुराम झा से लेकर अपने पूर्वजों का परिचय इस प्रकार दिया है—

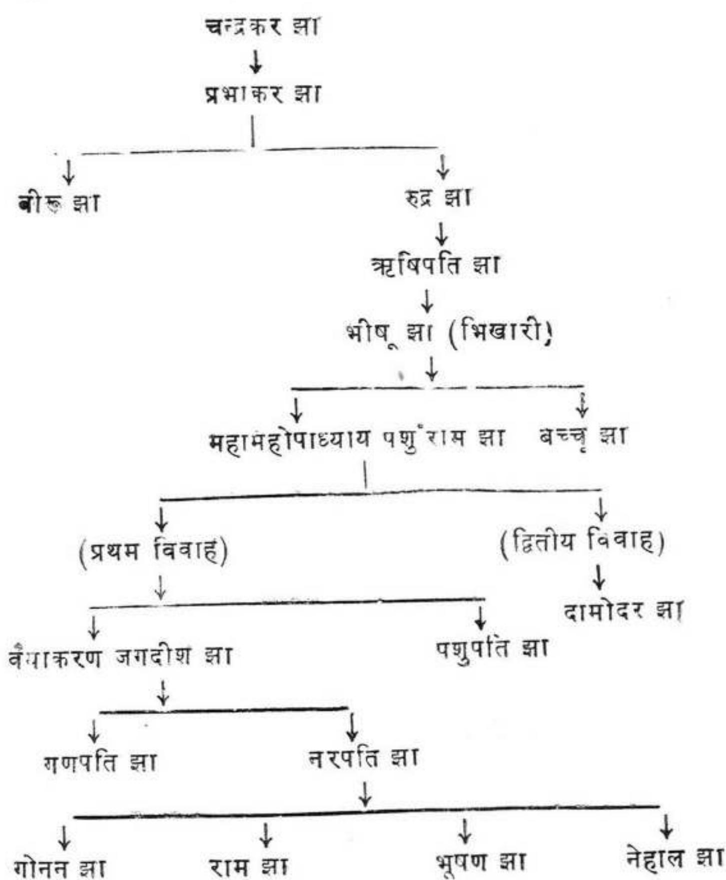
काश्यपान्वय महोदधिरत्नं विल्ववास कुल पद्मविवस्वान्
पर्शुरामतनयो जगदीशोऽभूदभूत् सदृशो गुणवृन्दैः ॥

नरपतिः किल तस्य सुतोऽभवत् सकलशास्त्र सरित्पति लोलनात्
विमलकीर्तिविधूदयतो हितः शशिनमाशु चकारमलीमसम् ॥
कुसुमपत्तनसज्जनताऽऽवकात् प्रथमवृत्तिमवापनबाबकात्
तदनुदेशनरेशमपि श्रितोंऽशुकसुवर्णसहादिक मार्जिजत् ॥
चकार काव्यं किल गोपिवल्लभं नाम्ना गुणैः सर्वजनस्यवल्लभम्
तथैव कीर्तेःशतकं सुभूपतेः श्री राघवस्यानुगुणं गुणाग्रणीः ॥

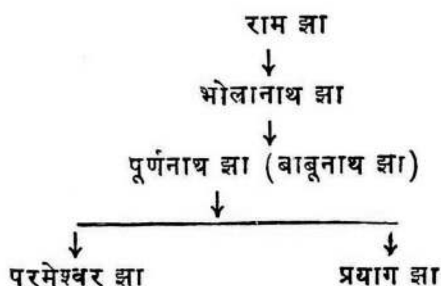
तस्य पुत्रोऽभवद्रामः पूर्णकामः सतांमतः।
यस्यच्छात्रैर्दिशः सर्वाः नक्षत्रैरिव शोभिताः ॥
भोलानाथः कृती तस्य तनयो विनयोज्ज्वलः।
नयनद्वययुक्तोयो ज्ञानेनाप त्रिनेत्रताम् ॥
तत्सुतः पूर्णनाथोऽभूत् गुणैः पूर्णैः पितुः प्रियः।
दुराराधतयावाल्ये यं बाबूनाथमब्रुवन् ॥

तत्पुत्रः परमेश्वरस्तरुवनी वासादसौभास्वरः
श्रीलस्यै करदेश्वराभिध विभोः प्रीत्यै प्रवन्धं व्यधात्
आकल्पं स हि कल्पपादप सभो भूपोऽस्तु सम्प्रीणयन्
प्राज्यं राज्यमुपार्जयंश्च कृतिनः कृत्याऽमुया तोषितः ॥

इसके अतिरिक्त हरिश्चन्द्र झा (महामहोपाध्याय जी के भ्रातृज) ने परमेश्वर झा के हाथो लिखी हुई वंशावली का उल्लेख किया है। तालपत्र पर लिखी इस वंशावली में बीजी पुरुष चन्द्रकर झा से उल्लेख इस प्रकार है—



१. मिथिलातत्वविमर्श प्रथम संस्करण



इसके बाद परमेश्वर झा पुत्र हीन रहे। इनकी एकमात्र पुत्री हुई जिनका विवाह मँगरपट्टी (मधुबनी) ग्राम में हुआ। अनुज प्रयाग झा के पुत्र हरिश्चन्द्र झा इनके उत्तराधिकारी हुए।

म० म० परमेश्वर झा की प्रारम्भिक शिक्षा दसौत ग्राम में संस्कृत विद्यालय में सम्पन्न हुई जहाँ इन्होंने प० चिरञ्जीव मिश्र से व्याकरण एवं साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन किया। तदुपरान्त सोलह वर्ष की अवस्था में क्वींस कॉलेज बनारस में पं० राजा राम शास्त्री एवं उनके शिष्य स्वनाम धन्य पं० बाल शास्त्री से व्याकरण धर्मशास्त्र मीमांसा साङ्ख्य वेदान्त तथा न्याय शास्त्र के शब्द खण्ड का गम्भीर अध्ययन किया। उन्हीं दिनों काशी नरेश के सभा पण्डित तार्किक ताराचरण भट्टाचार्य एवं मैथिल विद्वान् विश्वनाथ झा से न्याय का अनुमान खण्ड पढ़ा।

क्वीस कॉलेज से व्याकरण एवं धर्मशास्त्र में उत्तमरीति से उत्तीर्ण होकर १९ वर्ष की अवस्था में १८७६ ई० में राजपुताना के झालरा पाटन कैंटोनमेंट में झालाबाड़ स्टेट द्वारा सञ्चालित एक पाठशाला में अध्यापन कार्य प्रारम्भ किया। वहाँ चार वर्ष तक रहे। तदुपरान्त बिहार राज्य के पूर्णियाँ जिलान्तर्गत बनैली राज्य के राजा पद्मानन्द सिंह बहादुर के आश्रय में दि० १६ मई १८८० ई० से राज्य पण्डित के रूप में प्रतिष्ठित हुए। वहाँ कोशी से प्रभावित क्षेत्र में जलवायु की प्रतिकूलता के कारण अस्वस्थ हो गये। अतः तरौनी लौट आये। कुछ दिन घर पर स्वास्थ्यलाभ करने के उपरान्त १८८६ ई० में दरभङ्गा राज्य के अंशभूत 'गधवारि' नामक बबुआनी राज्य के द्वारा सञ्चालित सस्कृत पाठशाला में अध्यापन करने लगे। यहाँ वे बारह वर्ष तक रहे। उक्त स्टेट के अधिकारी बाबू वांमुदेव सिंह एवं उनकी धर्मपत्नी के दिवङ्गत हो जाने पर जब उसे दरभङ्गा राज्य में मिला दिया गया तब महाराज रमेश्वर सिंह ने उन्हें राजधानी दरभङ्गा बुला

लिया। दि० १-७-१८९९ ई० में राजपण्डित के रूप में वहाँ उन्हें विभूषित किया गया। यहाँ वे २५ वर्षों तक आजीवन रहे।

१९०२ ई० में डा० गंगानाथ झा के बाद दरभंगा राजपुस्तकालय का अध्यक्ष इन्हें बनाया गया। इस पद पर कार्य करते हुए उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन एवं सम्पादन किया। म०म० चित्रधर मिश्र मीमांसक के बाद महारानी महेश्वरलता संस्कृत महाविद्यालय दरभंगा में भी प्राचार्य के पद को अलंकृत किया। इन पच्चीस वर्षों में इन्होंने मिथिला, मैथिल मैथिली एवं संस्कृत साहित्य की भूरि-भूरि सेवा की। ३० जून १९२४ में इस नश्वर शरीर का त्याग किया।

उपाधियाँ—महामहोपाध्याय जी के प्रखर पाण्डित्य को उनकी रचनात्मक प्रवृत्ति ने और भी चमका दिया। इनमें कुछ करने की ललक थी। महाराज रमेश्वर सिंह जैसे विद्याप्रेमी का आश्रय भी एक सयोग था। इस मणि-काञ्चन-संयोग से मैथिल साम्प्रदायिक कर्मकाण्ड का उद्धार हुआ। इससे पूर्व संस्कार पद्धतियाँ मैथिली लिपि में हस्तलिखित थीं, जिनमें अनेक पाठ भेद थे। फलतः पण्ठितों के बीच बहुधा शास्त्रार्थ छिड़ जाते थे। इस विप्रतिपत्ति के कारण कर्मकाण्ड का ह्रास होना आरम्भ हो गया था। महामहोपाध्याय जी ने अनेक हस्तलिखित पद्धतियों का अनुशीलन कर उसका पाठोद्धार कर देबनागरी लिपि में प्रकाशित कराया इस कार्य के लिए मिथिला की पण्डित मण्डली ने उन्हें 'कर्म काण्डोद्धारक' की उपाधि प्रदान की। यह उपाधि कब एवं किस समारोह में दी गई यह निश्चितरूपेण ज्ञात नहीं होता किन्तु १९०७ ई० के बाद प्रकाशित ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलने के कारण स्पष्ट है कि इससे पूर्व ही यह उपाधि दी गई होगी।

१९०६ ई० में भारत धर्म महामण्डल की सभा हुई। जहाँ कार्तिक कृष्ण पञ्चमी को इन्हें वैयाकरण केसरी की उपाधि से सम्मानित किया गया। बाद में इसी महामण्डल के द्वारा महोपदेशक की उपाधि प्रदान की गई।

दि० १-१-१९१५ ई० में तत्कालीन अंग्रेज सरकार द्वारा महामहोपाध्याय की पदवी दी गई। इस अवसर पर वैयाकरण शिरोमणि खुद्दी झा ने अभिनन्दन पत्र तैयार किया था।

दि० २८-७-१९१७ ई० में बिहार पण्डित सभा के बाँकीपुर अधिवेशन विद्यानिधि की उपाधि से सम्मानित किया गया।

पटना विश्वविद्यालय की स्थापना के समय गठित संस्कृत शिक्षा समिति के वे सदस्य रहे। मुजफ्फरपुर धर्मसमाज संस्कृत महाविद्यालय में भी शासकीय समिति के सदस्य के रूप में अपना योगदान इन्होंने दिया। क्वीस कॉलेज, हिन्दू विश्वविद्यालय, कलकत्ता विश्वविद्यालय एवं बिहार उड़ीसा संस्कृत समिति के संस्कृत विषयक प्राश्निक एवं परीक्षक की प्रतिष्ठा भी प्राप्त की।

कृतियाँ—महामहोपाध्याय जी द्वारा प्रणीत ३९ ग्रन्थों की सूची उपलब्ध होती है। १९४९ ई० में प्रकाशित "मिथिलातत्व विमर्श" के अन्त में इनके भ्रातृज एवं उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र झा ने लेखक परिचय के क्रम में यह सूची दी है। साथ ही उन्होंने भी इसके अतिरिक्त ग्रन्थों के अस्तित्व की सम्भावना व्यक्त की है। यद्यपि १९७७ ई० में मैथिली अकादमी द्वारा द्वारा प० श्री गोविन्द झा के सम्पादन में प्रकाशित उक्त ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण में भी इस सूची में कोई वृद्धि नहीं हुई है।

इनकी कृतियों को विषयानुसार निम्नलिखित चार भागों में विभक्त किया जा सकता है।

१. धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ—

१. अतीचारादि निर्णय टिप्पणी
२. आह्निक पद्धति (सटीका)
३. इन्द्र यज्ञ विधि
४ इन्द्रध्वजोत्सव विधि
५. कृत्य सिन्धु
६. गङ्गा पत्तलक
७. गुण विष्णुभाष्य टिप्पणी
८. चतुश्चरणतडागयाग पद्धति
९. तडागयाग टिप्पणी
१० तुलादान विधि
११. दशकर्म पद्धति
१२. धनाधिकार निर्णय
१३. नक्षत्र निर्णय
१४. पुण्य स्नान विधि
१५. मास निर्णय
१६. राज्याभिषेक पद्धति
१७. बर्षकृत्यम्
१८. विनायक स्नपनम्
१९. वृषोत्सर्ग पद्धति
२०. शिवस्थापन विधि
२१. शूद्र पद्धति टिप्पणी
२२. श्राद्धरत्न टिप्पणी
२३. सदाचार पद्धति

२. संस्कृतकाव्य—

२४ ऋतुवर्णनम्
२५. कुसुमकलिका आख्यायिका
२५. मिथिलेश प्रशस्तिः
२७. यक्ष समागम्
२८. वाताह्वानम्
२९. श्री रमेश्वर रत्नाकरः

(३) व्याकरण कोशादि—

३०. उष्म विवेक टीका — ३१. परमेश्वर कोष

३२. प्रयोग दर्पण — ३३. संस्कृत पाठ

(४) मैथिली भाषा की कृतियां

३४. महिषासुर वध नाटक — ३५. मिथिलातत्व विमर्श

३६. सदाचार दर्पण — ३७. सीमन्तिनी आख्यायिका

शेष दो ग्रन्थ ३८. आर्य सिद्धान्त सङ्ग्रह एवं ३९. विषय सत्सङ्गकीर्तनम् अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध होने के कारण किस विषय से सम्बद्ध है यह भी कहना कठिन है।

इनमें से अधिकांश कृतियाँ अप्रकाशित हैं। मिथिलातत्व विमर्श (मिथिला के इतिहासविषयक) को छोड़ कर शेष प्रकाशित ग्रन्थ भी पुन: संस्करण के अभाव में अनुपलब्ध हैं। अप्रकाशित ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ कहां एवं किस स्थिति में है इसका कुछ भी पता नहीं लग रहा है। इसके लिए मैं व्यक्तिगत रूप से अन्वेषण कर रहा हूं।

संस्कृत के काव्य—जैसा कि सूची से स्पष्ट है—महामहोपाध्याय जी ने संस्कृत भाषा में छः काव्यों का निर्माण किया था इनमें केवल यक्ष समागम का एक संस्करण प्रकाशित हुआ था। वाताह्वानम् काव्य के सम्बन्ध इतना ही कहा जा सकता है कि यह मिथिला की एक परम्परागत काव्य विधा का अनुवर्तन है। चन्दा झा ने भी एक वाताह्वान की रचना की थी। मैथिली भाषा में भी एक आध काव्य इस विषय पर उपलब्ध हैं।

मिथिलातत्व विमर्श के प्रथम संस्करण की भूमिका में श्रद्धेय श्री सुरेन्द्र झा 'सुमन' 'मिथिला मिहिर' (मैथली पत्रिका, दरभङ्गा के तत्कालीन सम्पादक ने ऋतुवर्णनम् एवं कुसुमकलिका आख्यायिका के सम्बन्ध में थोड़ी बहुत चर्चा की है। उन्होंने ऋतुवर्णन काव्य की भूरि भूरि प्रसंशा करते हुए उसे 'ऋतु संहार' का उपसंहार कहा हैं। इस काव्य से उन्होंने दो श्लोक उद्धृत किया है जो इस प्रकार है—

"नव किसलयदम्भाक्षिप्त सिन्दूर मुष्टिः
प्रतिवनततिलक्ष्याऽऽक्रीड्य होल्युद्धवेऽसौ।
कमल दलमिषेणोत्कीर्य सावीरमभ्रं-
सरसि कवि सहाय: स्नाति किंस्विद्वसन्त:॥"

अपिच

"चैनचैल रूचिर्विचिनिचोलञ्चाटुचुञ्चुरचिरादवमुच्य
चन्दनाक्तल कुचाभकुचाङ्काञ्चिचचुचुम्ब चपलश्चिबुकोच्चे

उपर्युक्त उदाहरण से इस काव्य की प्रौढिता एव सरसता की कुछ कल्पना की जा सकती है।

कुसुम कलिका आख्ययिका को उन्होंने भी पर्याप्त महत्व दिया है। सुमन जी' के अनुसार इसमें जहां एक ओर गद्य शैली में वाण की प्रौढ़िता दृष्टिगोचर होती है वहाँ दूसरी ओर मिथिला प्रदेश की मिट्टी की सुगन्धि सर्वत्र आभूत होती है। श्लेषोपमा एवं विरोधाभास अलङ्कारों से विभूषित निम्नलिखित उद्धरण महोपदेशक कवि परमेश्वर झा की काव्यकला को स्पष्टतः अभिव्यक्त करता हैं—

"स दुर्जनः) हि वास्तविक इव स्वारोपितमप्युन्मूल्यान्यत्र क्षिपति; पलाव इवान्तःकृत्यं ग्राहयति सज्जनमीन मसज्जनधीवरेण। कूपगुण इवान्तः प्रविश्य जीवनमेव निःसारयति। तक्राट इव सारमेव विलोडयति, कृपाणइव स्वर्ण कोश निहितोऽपि प्राणानेव व्येति, गेन्दुक इव पतितोऽपि जीवनं निःसार्येव मुहुस्तदर्थं मुत्तिष्ठति, विषवृक्ष इव रोपितोऽपि, सेचितोऽपि, बर्द्धितोऽपि अत्यन्तं सेवितो मोहमन्ततो नाशमेव वा जनयति, शरत्सुखाश इवादौ मधुरः शीतलोऽपि परिणामे तिक्तः सन्ताप करश्च। सज्जनस्तु श्री खण्ढ चन्दन इव घृष्टोऽपि शैत्यं न त्यजति, आम्रावर्त इव गलितोऽपि सिक्थीकृतोऽपि न माधुर्यजहाति, वीणोपनाह इव मोटितोऽति मधुरमेव श्रावयति। ईक्षुरिव खण्ढीकृतोऽपि खलीकृतोऽपि न कटुताञ्जनयति। तिल इव पिष्टोऽपि स्नेह मेवाऽभिव्यनक्ति, कतक इव कलुष पातितोऽपि भुवनमेव निर्मलयति, कलम इव शिरसि छिन्नोऽपि प्राणानेव पोषयति"।।

इस प्रकार अत्यन्तक्षीण आधार पर भी हम कवि की काव्यकला का अनुमान लगा सकते हैं। इन काव्यों के प्रकाशन से निश्चय ही संस्कृत काव्य भण्डार में थोड़ी सी भी बृद्धि होगी।

प्रस्तुत काव्य : परम्परा एवं प्रवृत्ति

महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित के प्रारम्भ में कवियों के विषय में कहा है—

सन्ति श्वान इवासङ्ख्याः जाति भाजो गृहे गृहे
उत्पादकाः न वहवः कवयः शरभा इव ।।

अर्थात् कवि तो अनगिनत है–जो सामान्य रूप से स्वभाव मात्र का वर्णन कर लेते हैं किन्तु उत्पादक कवि बहुत नहीं है। यहाँ उत्पादक शब्द का तात्पर्य काव्य के क्षेत्र में उपजीव्य है। बाण भट्ट का यह कथन संस्कृत साहित्य के सन्दर्भ में बहुत समीचीन लगता है। आदि कवि वाल्मीकि व्यास कालिदास, भास, सुबन्धु, बाण, भारवि आदि अङ्गुलिगण्य कवि हैं जिनकी काव्य रचना अन्य परवर्ती कवियों के लिए प्रेरणादायिका रही हे।

महाकवि कालिदास ऐसे प्रेरणा दायक कवियों में पर्याप्त चर्चित रहे हैं। सम्भवतः इसीलिए जयदेव ने प्रसन्नराघव में उन्हें 'कविकुलगुरु' कहा है। यद्यपि उनकी समस्त कृतियाँ परवर्ती कवियों को प्रभावित करने में सफल रही है फिर भी मेघदूत इस अर्थ में सबसे आगे हैं; इससे प्रभाबित काव्यों की एक पूरी श्रृङ्खला ही उपलब्ध है। आधुनिक काल में भी अनेक दूत काव्य लिखे जा रहे हैं। यह प्रभाव ग्रहण मुख्यतः दो प्रकार से हुआ है—शैली गत एवं विषय गत। शैली गत प्रभाव के कारण मुख्यतः दूत काव्य की स्फुट परम्परा विकसित हुई है, जिसमें विभिन्न प्राणियों को दूत बनाकर आत्म निवेदन किया गया है। हंस[1] कोकिल[2] भ्रमर[3] काक[4] वक[5] चक्रवाक[6] मृग[7] कपि[8] आदि प्राणियों को दौत्यकर्म में नियुक्त किया गया है।

1. हंस हंस संदेश–वेदान्त देशिक (१३ वीं शदी)
हंस दूत–रूप गोस्वामी (१७वीं शदी)
हंस संदेश–अज्ञात नामाकवि
हंस दूत–रघुनाथ दास (१७वीं शदी)
हंस संदेश–वामन भट्ट वाण (१५वीं शदी)
हंस सदेश–पूर्ण सरस्वती (१६वीं शदी)
2. कोकिल
पिकदूत–रुद्रन्याय वाचस्पति (१७वीं शदी)
कोकिल संदेश–उद्दण्ड कवि (१४वीं सदी)

इतना ही नहीं चन्द्र[9], पवन[10], मन[11], पदचिह्न[12], छायापुरुष[13] (सिद्ध) वृक्ष[14] आदि प्राकृतिक अथवा अदृष्ट पदार्थों से दूत कार्य लिया गया है।

पिकदूत–अम्बिका चरणदेव शर्मा
कोकिल संदेश–वेंकटाचार्य (१७वीं शदी)
कोकिल दूत—हरि दास (१७६५ ई०)

3. भ्रमर—
भ्रमर संदेश – वासुदेव
भ्रमर दूत—रुद्र वाचस्पति (१७ वीं शदी)

4. काक—
काकदूत–गोपाल शिरोमणि (१२६६ ई०)
काकदूत–रामगोपाल (१७६६ ई०)

5. वक —
वक दूत–म० म० अजित नाथ न्यायरत्न (१३२६ बंग-संवत)

6. चक्रवाक –
कोक संदेश–विष्णुत्राता
रथाङ्ग दूत–लक्ष्मीनारायण

7. मृग —
मृग संदेश–वासुदेव कवि (१७ वीं शदी)

8. कपि—
कपिदूत–अज्ञात नामा कवि

9. चन्द्र—
इन्दु दूत–विनय विजय गणि
चन्द्रदूत–विनय प्रभु १३ वीं शदी)
चन्द्रदूत–विष्णु चन्द्रतर्कालङ्कार (१८ वीं शदी)
चन्द्रदूत–विमल कीर्ति (१७ वीं शदी)
चन्द्रदूत–जम्बू कवि (१० म शदी)

10. पवन—
पवनदूत–धोयी कवि (१३ वीं शदी)
पवनदूत–सिद्ध विद्यानाथ वागीश (१७ वीं शदी)
पवनदूत–वादिराज (१७ वीं शदी)

काव्याचार्य भामह के एक कथन से यह भी स्पष्ट होता है कि उनके समय से पूर्व दूत काव्य की यह परम्परा प्रौढ़ हो चुकी थी। उन्होंने अयुक्ति मत् दोष की विवेचना करते रुए कहा है—

अयुक्ति मद्यथा दूता जलभृन्मारुतेन्दव:
तथा भ्रमरहारीतचक्रवाकशुकादय:
अवाचोऽव्यक्तवाचश्च दूरदेश विचारिण:
कथ दूत्यं प्रपद्येरन् इतियुक्त्यान युज्यते
यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इब भाषते
यथा भवतु भूम्नेदं सुमेघोभि: प्रयुज्यते।।

यहाँ रबसे पहले जलभृत्-मेघ शब्द के प्रयोग से अनुमान लगाया जा सकता है कि भामह ने इसमे 'मेघदूत' का सँकेत किया हो। इस प्रकार कालिदास से भामह तक यह प्रभाव ग्रहण बहुत सक्रिय रहा। हलांकि 'कालिदास से पूर्व ही भामह का काल मानने वाले ऐतिहासिकों की संख्या कम नहीं !! खेद का विषय है कि भामह से पूर्व की यह परम्परा अनु. पलब्ध है।

उपलब्ध काव्यों की इस परम्परा में मेघदूत की शैली अर्थात्–दौत्यकर्म विशेष रूप से प्रभावी रहा। विषयगत प्रभाव अर्थात्-यक्ष-यक्षिणी संबद्धत्व नहीं के बराबर रहा। जैसा कि हम पाते हैं कुछ दूत काव्य शान्तरस प्रधान है दार्शनिकता से ओतप्रोत हैं। जैसे विनय विजय गणि कृत इन्दुदूत में एक शिष्य अपने गुरु की विजय के प्रति आत्म निवेदन करता है। 'हस संदेश'

पवनदूत–वादि चन्द्र (१६ वी शदी)
वातदूत–कृष्णनाथ व्याय पञ्चानन (१७ वीं शदी)
अनिल दूत–रामदयाल तक रत्न
दक्षिणानिलदूत—भोलाशङ्कर व्यास (२० वीं सदी)

11. मन—चेतोदूत–अज्ञात जैनाचार्य कवि
मनोदूत–विष्णु दास ([redacted]५ वीं शदी)
मनोदूत–राम शर्मा
मनोदूत–तैलग ब्रजनाथ
मनोदूत–भगबद्दत्त

12. पदचिह्न–पादाङ्कदूत–श्री कृष्ण तार्वभौम (१७१५ ई०)

13. छाया पुरुष–सिकदूत–अवढूत राम योगी (१३ वीं शदी)

(अज्ञातनामा कवि) लघूकृति में एक शैव माया के कारण अपने आराध्य से वियुक्त होकर अपनी व्यथा कथा मानस सरोवर के प्रति जाते हुए श्वेत हंस से कहता है। जैन कवियों की कृतियाँ भी दार्शतिकता से ओतप्रोत हैं। एक अज्ञातनामा कवि कृत 'चेतो दूत' में गुरु के पास आत्म विज्ञप्ति भेजी गई है जिसमें जैन दर्शन की रीति से दुःखमय संसार का वर्णन किया गया है। 'जिन सेन' कृत 'पाश्र्वाभ्युदय में भी दार्शनिकता है। जैनोपाध्याय 'मेघविजय' ने 'मेघदूत समस्यालेख' नामक काव्य में राजा विजयप्रभृ सूरिदेव के पास अपनी दरिद्रता का सदेश भेजकर उसे दूर करने की प्रार्थना की है।

इस प्रकार दूत काव्य की परम्परा केवल शृङ्गारिक ही नही उसमें भक्ति, दरिद्रता, दार्शनिकता आदि तत्वों का भी समावेश पाते हैं। किन्तु ये सब शैली की दृष्टि से मेघदूत से प्रभावित प्रतीत होते हैं।

प्रभाव ग्रहण का दूसरा रूप विषयनिष्ठता भी प्रभावी रही है। कवियों ने यक्ष-यक्षिणी एवं दूत-मेघ को कथानक के केन्द्र में रखकर काव्यों की रचना की। इस शृङ्खला में कृष्णभाचार्यकृत मेघ संदेश विमर्श' कृष्टमूर्ति कृत 'यक्षोल्लास', रामशास्त्री कृत 'मेघ प्रति सदेश', रामचन्द्र कृत 'घनवृत्तम्' तथा म०म० परमेश्वर झा कृत प्रस्तुत काव्य यक्ष समागम' आदि आते हैं। इनमें से कुछ काव्य दूत काव्य की परम्परा के अन्तर्गत आते हैं जैसे—'मेघ प्रति संदेश' आदि तथा कुच विशुद्ध शृङ्गार काव्य हैं। इन शृङ्गारिक गीति काव्यों में प्रस्तुत काव्य का भी नाम पर्याप्त चर्चित हैं।

इस विषयगत प्रभाव ग्रहण के कारणों का भी विश्लेषण किया जा सकता कालिदास कृत :मेघदूत की श्लोक संख्या के सम्बन्ध में यद्यपि आज भी मतभेद है[1] किन्तु यदि प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की बात मान लें तो "मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः" इस पंक्ति के साथ काव्य का अन्त हो जाता है।

---

१ ❀ जिनसेन कृत पाश्र्वाभ्युदय के आधार पर	१२०
❀ काश्मीरी टीकाकार बल्लभदेव के अनुसार	१११
❀ दक्षिणावर्त, पूर्णसरस्वती एवं परमेश्वर के अनुसार	११०
❀ विजयसूरि एवं मेघराज के अनुसार	१२७
❀ जनार्दन, लक्ष्मीनिवास, सुमति विजय, महिम सिंह गणि, एवं मेघलता के अनुसार	१२६

इस स्थिति में यक्ष की विरहनिवृत्तिवर्णन के अभाव में काव्य की सम्प्रेषणीयता एवं सहृदय समाजिकों को ऊद्वेलित करने की क्षमता अपने चरम विन्दु पर पहुंच जाती है जहाँ कल्पनाशील सामाजिकों की चिन्तन प्रक्रिया की गति बढ जाती है। हम सोचने के लिए बाध्य हो जाते हैं कि इसके बाद क्या बात हुई होगी ....यक्ष के घर लौटने तक यक्षिणी जीविता भी रही अथवा नहीं.........इत्यादि। प्रथमत: सहृदय सामाजिक होने के कारण कवि के मन में भी ऐसी बातें हुई होगी जिसके फलस्वरूप वियोग के साधा-रणी कारण से उद्बुध काव्यों का प्रणयन हुआ होगा। चूंकि भारत की भूमि आशावाद की जननी है अत: कवियों ने यक्ष और यक्षिणी का मिलन कराकर हीं छोड़ा। मेघदूत के अन्त में वे पाँच प्रक्षिप्त श्लोक जिन्हें मल्लिनाथ ने प्रक्षिप्त माना है इसी मनोभावना के फल प्रतीत होते है। प्रस्तुत काव्य यक्ष समागम के कवि ने तो स्वयं भी इस बात की पुष्टि प्रथम श्लोक की टिप्पणी में की है—

"मेघदूते यक्ष वियोगान्त वृत्तान्तस्यैव वर्णनादिह समागम कथा प्रस्तूयते"

केवल मेघदूत के संदर्भ में ही नहीं यह प्रवृत्ति हम अन्यत्र भी पाते हैं। विल्हण कृत 'चौरपञ्चाशिका' में हम देखते हैं कि कवि विरह की ज्वाला में सयोग के दिनों का स्मरण करता है।। सम्पूर्ण काव्य उत्कृष्ट है किन्तु इसमें पूर्वा पर कथानक का सर्वथा अभाव है। अत: इसके आधार पर भी अनेक काव्य लिखे गये।

❀ नेमिदूत काव्य, शीलदूत काव्य, सारोद्धारिणी टीका, एव टीकाकार दिवाकर उपाध्याय के अनुसार	१२५
❀ सरस्वती तोर्थ, एवं क्षेम हंस गणि	१२३
❀ चारित्रवर्धन	१२२
❀ सिंहली अनुवाद	११८
❀ तिब्बती अनुवाद	११७
❀ विलसन कृत संस्करण	११६
❀ गिल्ड माइस्टर कृत संस्करज	११३
❀ स्टेन्सलर कृत संस्करण	११२
❀ मेकडॉनल कृत सस्करण	१११
❀ डा० सुशील कुमार डे के अनुसार	११० अथवा १११
❀ जे हर्टल के अनुसार	१०८

इनमें से तीन काव्य हैं— (१) चौरपञ्चाशिका की पूर्व पीठिका का औत्तराह पाठ (२) दाक्षिणात्य पाठ (३) भूवर कविकृत 'विल्हण पञ्चाशत्प्रत्युत्तरम्' अथवा 'नरेन्द्रतनया संजल्पितम्' इनमें यद्यपि प्रथम दो काव्यों की रचना का श्रेय विल्हण को ही दिया गया है किन्तु भाषा, शैली एवं भावाभिव्यञ्जकता की दृष्टि से ये अन्य कविकृत प्रतीत होते हैं। ती-सरे-काव्य में-राजकुमारी शशिकला का आत्म निवेदन है जिसे सुनकर राजा कवि विल्हण को मृत्युदण्ड से मुक्त कर शशिकला से विबाह करा देते हैं जिससे काव्य का सुखमय अन्त होता है। ये तीनों काव्य पूना ओरियन्टल सीरीज सं०-८७ में एस० एन० तातपात्रे कर महोदय द्वारा सम्पादित विल्हणकृत चौर पञ्चाशिका के साथ सम्पादित है।

म० म० परमेश्वर झा द्वारा प्रणीत प्रस्तुत लघु काव्य इसी प्रवृत्ति का परिणाम प्रतीत होता है। इसमें यक्ष और यक्षिणी के मिलन की कथा है। अत: इसका अङ्गीरस संयोग श्रृङ्गार है। रात्रि का समय चन्द्रिका की प्रखरता प्रासाद शिखर का निर्जन स्थल आदि उद्दीपन विभाव हैं। कवि ने वात्स्यायन कृत कामसूत्र में वर्णित तथ्यों और युक्तियों का बहुधा उल्लेख कर काव्य के संयोग श्रृङ्गार को जीवन्त बना दिया है। जैसे —रत्यवसान में संवाहन, नक्षत्र दर्शन चन्द्रिका सेवन आदि (श्लो० ६), कामयुद्धाङ्क संज्ञक रति का वर्णन (श्लो०-७) आदि।

• कवि मानवीकरण एवं प्रकृतीकरण की कला में प्रवीण हैं। एक स्थल पर चन्द्रमा का वणन एक नायक के रूप में हुआ है जो सन्ध्याकाल से ही मानिनी नायिका कमलिनी के भ्रमररूपी वस्त्रों को हटाकर भी प्रार्थी है किन्तु कमलिनी आखें नहीं खोल रही है। (श्लोक–२५) एक अन्य स्थल पर रात्रि का बर्णन एक नारी के रूप में हुआ है। (श्लोक–२८) इन स्थलों में प्राकृतिक पदार्थों का मानवीकरण स्पष्ट है। इसके विपरीत व्यक्ति बर्णन में कवि ने उस पर प्राकृतिक पदार्थों का आरोप किया है। जैसे यक्षिणी के शरीर सौष्ठव के वर्णन में उसे कहीं मानससरोवर के रूप में प्रस्तुत किया गया है (श्लोमें-७ तो कहीं यक्षिणी के मुख को चांदी के गमला लगाए गये स्थलकमल के रूप में (श्लो०–१८)

कव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि म०म० परमेश्वर झा कवि की अपेक्षा पण्डित अधिक है। उन्होने व्याकरण, ज्योतिष, मीमांसा, कामसूत्र आदि शास्त्रों में प्रतिपादित विषयों का पर्याप्त उपयोग किया है। एक स्थल पर नायिका के मुख की तुलना स्थल कमल से करते हुए उन्होंने शब्दो की रूढ़ता और यौगिकता का उल्लेख किया है जहाँ व्याकरण शास्त्रीय शब्दावली

की व्युत्पत्ति ज्ञान के बिना रसास्वादन में बाधा होती है। (श्लो०-१८) एक स्थल पर उन्होंने मीमांसा के सिद्धांत का भी उपयोग किया है। जिसमें तिर्यकयोनि में उत्पन्न पशु पक्षियो को तप करने का अनधिकारी कहा गया है (श्लो०-२2)। इसी प्रकार दक्षिण एवं उत्तर में क्रमश: अगस्त्य और वसिष्ठ तथा लोपा मुद्रा और अरुन्धती नामक तार का वर्णन उनके ज्यौतिष ज्ञान का सकेत करता है।

अलङ्कार प्रयोग के सन्दर्भ में भी सर्वाधिक स्थल पर अर्थान्तरन्यास का प्रमोग (श्लो०-१४, ५५, २८, ३२, ३४, ३५ इत्हादि) काव्य के भाव पक्ष एवं कबि के पाण्डित्य का 'परिचायक' है।

कला पक्ष की कुछ दुर्बलता के बावजूद समग्र रूप से यह सहृदय हृदया ह्लादक हैं। कवि अलङ्कार के साथ-साथ उक्ति वैचित्र्य के प्रति साकांक्ष प्रतीत होते हैं जिनका आस्वादन मिलता है।

यह काव्य यद्यपि मेघदत का ऋणी है, कवि ने स्थल स्थल पर महाकवि कालिदास के भावों का उल्लेख किया है तथापि इसे मेघदूत का अनुपूरक काव्य नहीं कहा जा सकता। बस्तुत: मेघदत अपने आप में इतना पूर्ण है कि उसे कि उसे किसी अनुपूरक की आवश्यकता ही नही। इसलिए कवि ने 'यक्ष समागम' के कथ्य को एक अलग दिशा दी है। उन्होंने इस काव्य के माध्यम से अधीर-मानसों को धैर्य की शिक्षा दी है जो इस काव्य का कान्ता सम्मितत्व सिद्ध करता हैं—

'अल्पादल्पो भवति बिषम: कल्पकल्पो हिं काल:
सङ्कल्पाप्त: शमय-समयो ह्रस्यते द्राधितोऽपि ॥''

इस काव्य की रचना कब हुई इसके सम्बन्ध में प्राभाजिक तथ्य उपलब्ध नहीं है। मेरे अद्यतम ज्ञान के अनुसार इनक प्रथम संस्करण राज दरभङ्गा द्वारा कराया गया था। उस संस्करण में काल का उल्लेख नहीं है, किन्तु पुष्पिका में केनल दो उपाधियों का (कविकुलालङ्कार एवं महावैयाकरण) उस्लेख हुआ है। चूँकि 1907 ई० के बाद प्रकाशित ग्रन्थों में कर्मकाण्डोद्धारक उपाधि का भी उल्लेख हुआ हैं अत: यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रकृत काव्य 1907 ई० से पूर्व प्रकाशित हुआ होगा। विषय बस्तु से भी यह कवि की युवाबस्था की रचना प्रतीत होती है।

मिथिला की यह उर्वर भूमि सुर-भारती की अर्चना के लिए सदा से पुष्प-वृक्ष उगाती रही है। उन पुष्पों से निर्मित मालिका का एक छोटा सा पुष्य कालकवलित न हो जाए इस हार्दिक इच्छा से इस लघु काव्य को सहृदयों कर कमलों में अर्पित कर रहा हूँ।

मुजफ्फरपुर भवनाथ झा
५ जुलाई

श्री गणेशाय नमः

भूयो[1] भ्राम्यन् सपदि विलपन् सतिप्रियायाः[2] वियोगात्
पक्षानष्टौ[3] बत विगमयञ्छापशिष्टान्स यक्षः
तस्मान्मुक्तिं[4] कथमपि पुनः प्राप्यदेवे प्रबुद्धे[5]
तूर्णङ्गत्वाभवनमपभी वल्लभामाबभाषे ॥१॥

श्री शारदादेव्यै नमः। यक्ष समागममिति काव्यस्यादौ कर्मकाण्डोद्धारकः वैयाकरण केसरिपदाङ्कितः महामहोपाध्यायः कविः परमेश्वर शर्मा श्रीगणेशाय नमः इत्युक्त्वा मङ्गल विधाय कविकुलगुरुकालिदासप्रणीतस्य मेघदूतस्य यक्षस्य विरहेण साधारणीभूतः तयोः सम्मेलनात् जायमानेन रत्यानन्देन सहृदयान् आप्लावयितुम् काव्यमारभते भूयो भ्राम्यन्नित्यादिना।

"प्रत्यासन्ने नभसि दयिता जीवितालम्बनार्थी" यक्षः स्वानुजीकृतम् उत्तराभिमुखम् मेघम् अलकामप्रेष्य प्रियायै सन्देशानपि संश्राव्य कथञ्चिदपि शापावधिं व्यतीयाय। कथं व्यतीयाय इति कथयन् कविः कथयति-स यक्षः स्वाधिकारात्प्रमत्तः अतः भर्तुः कुबेरस्य वर्षभोग्येण शापेनास्तङ्गमितमहिमा मेघदूतस्य चरितनायकः सतिप्रियायाः पतिव्रतायाः यक्षिण्याः वियोगात् भूयः भ्राम्यन् पुनः पुनः चतुर्षु दिक्षु पश्यन्। भ्रमु अनवस्थाने। "वा भ्राशम्लाश-भ्रमु क्रमु० इत्यादिना कर्त्रर्थेश्यनि शमामष्टानां दीर्घः० इत्यादिनादीर्घे। रामगिर्याश्रमेषु ' श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टपातम्' इत्यादि प्रकल्पयन् स्वप्रियाया साम्यम् वनस्थलीषु अन्वेषयन् परम् कुत्रचिदपि तस्याः साम्यं न दृष्टवा सपदि युगपत् विलपन्। भ्रमणेन सहैव विलापमपि कुर्वन्। व्युपसर्गपूर्वकात् लप् व्यक्तायां वाचि इति धातोः कर्त्रर्थे शतृ प्रत्यये उपसर्गयोगात् सशब्दम् क्रन्दनमिति धात्वर्थप्रकाशनम्। 'विलापः परिदेवनम्' इत्यमरः।

टिप्पणी—१. मेघदूते यक्षवियोगान्तवृत्तान्तस्यैव वर्णनादिह समागमकथा प्रस्तूयते। भूयोभ्राम्यन्नित्यादिना। २. सती चासौ प्रिया सतिप्रिया तस्याः पतिव्रतायाः इत्यर्थः। ३. चतुरोमासान्। ४. शापात्। ५. देवोत्थानानन्तरम्। तदुक्तं मेघदूते "शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ। शेषान्मासान् गमय चतुरोलोचने मीलयित्वेति।

अनेनास्य उन्माद: अभिव्यक्त:। शापशिष्टान् अष्टौपक्षान् चतुरोमासान् आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघदर्शनादारस्य हरिवोधिनीमेकादशीं यावत्। तदुक्तम् मेघदूते-"शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ शेषान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा" इति। विरह जन्यं क्लेशम् दु:सहमपि येनकेन प्रकारेण सह्यीकुर्वन् विगमयन् व्यतीतंकुर्वन्। पुन: देवे क्षीरशायिनि विष्णौ प्रबुद्धे जागृते सति देवोत्थानानन्तरम् इति। यस्य च भावेन भावलक्षणमिति सिद्धावस्थापन्नभावार्थे सप्तमी। तस्मात् शापात् मुक्तिःप्राप्य अपभी: अपगताभी: भयम् यस्य एवम्भूत: नि,शङ्क: यक्ष: तूर्णम् शीघ्रम् भवनङ्गत्वा वल्लभां स्वप्रियाम् यक्षिणीम् आबभाषे उवाच।

चरमचरणे अनुप्रास:। "अनुप्रास: शब्द साम्यं वैषम्येऽपि स्वरस्य यत्" इति लक्षणात्। मन्दाकान्ता वृत्तम् काव्यसमाप्तिपर्यन्तम्।

हिन्दी अनुवाद—पतिव्रता पत्नी के वियोग में बार-बार चारो ओर घूमता विलखता हुआ यक्ष किसी प्रकार शाप की अवधि के शेष भाग आठ पक्ष अर्थात् चार महीना व्यतीत करता हुआ भगवान विष्णु के जागने पर (देवोत्थान एकादशी के बाद) उस शाप से किसी तरह छुटकारा पाकर शीघ्र ही भय रहित होकर अपने घर पहुँचा और अपनी प्रियतमा से बोला।

क्षेम प्रश्नै:क्षण कतिपयं कञ्चिदुत्क: कथाभि:
कालं बालामनिभिषदृशा वीक्षमाणोतिबाह्य
प्राप्ते साये[1]ऽयमय समये प्रोल्लसन्केलितल्पे
जल्पे रात्रौ नव-नव रतै: कान्तया निर्विवेश[2] ॥२॥

यक्ष: दिने एव गृहमवाय प्रियाञ्च ददर्श। परम् कामातुर: सन्नपि दिवसे सुरतनिषेधात् कथङ्कथञ्चित् दिनस्य शेष भागं व्यतीयाय। तद्वर्णयति क्षेम प्रश्नैरित्यादिना। क्षणकतिपय कतिपयं क्षणम् इति कालापरिमाणिना इति समास:। काल समयं क्षेमप्रश्नै: कुशलादिविषयकं: प्रष्टव्यै: कीदृशी ते स्थितिरित्यादिभि: प्रश्नै:। किञ्चित् कालन्तु कथाभि: यक्षिण्या: कथनै: उत्क: उन्मना: उद्गत-मनस्क: यक्षिण्या: विरहव्यथाश्रवणात् उत्कण्ठित: सन्। कश्चित्कालन्तु अनिमिषदृशा निर्निमेष दृष्ट्या बालां न व वय: कामाम् अतएव प्रथमावतीर्णतारुण्यमन्मथा या यक्षिणी ताम् मुग्धामित्यर्थ:। एतच्च

---

१. अय: शुभा वहो विधि: तन्मयं सायङ्काले इत्यर्थ:।

२. सम्भोगसुखमनुबभूव। तदुक्तं मेघदूते —"पश्चादावां विरह गुणितं तन्तमात्मा भिलाषम्। निर्वेक्ष्याव: परिणत शरच्चन्द्रिकासु क्षपास्विति।

कालिदासेनापि संसूचितम् —"गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालाम्"! अपिचधारासिक्तस्थलसु रमणस्त्वन्मुखस्यास्यबाले'' इत्यादिषु स्थलेषु यक्षिण्या: बाल्यंवय: उक्तम् । ताम् वीक्षमाण: पश्यन् काल दिनस्यावशिष्टम् अतिवाह्य व्यतीत्य अय यक्ष: अयमय समये शुभकार्यसम्पादनीये समये साये सायङ्काले प्राप्ते केलितल्पे क्रीडा व्यायाम् शयनीये इति प्रोल्लसन् प्रकर्षेण प्रियाम् श्लेषयन् आलिङ्गयन् । प्रोदुपसर्गपूर्वकात् लसश्लेषण क्रीडनयो: इति धातो: शतृ प्रत्ययान्तम् रूपम् । यद्यपीह क्रीडार्थ: अपि स्यात् परम् निर्बिवेशेति पदेन भोगानुकूल व्यापारस्याभि धानात् श्लेषणार्थ: चारुत्व प्रकाशक: । यद्वा प्रोदुपसर्ग पूर्वको लस धातु: शोभाथामपि इत्युक्तम् उपसृष्ट धात्वथ सग्रहे दीनबन्धु शर्म्पणा । एवम्भूतो यक्ष: रात्रौ रजन्याम् अनल्पै: प्रभूतै: नव नव रतैरनुपभुक्तैरासनादिभि: सर्वथा नवीन प्रकार कै: कान्तया यक्षिण्या सह निर्विवेश-उपबुभुजे । निरित्यु पसर्ग पूर्वकात् विश् प्रवेशने इति धातो: लिटि प्रथम पुरुषैक वचने । अस्य भोग इत्यार्थ: उपसृष्ट धान्वर्थ संग्रहे। अपिच-"निर्वेक्ष्याव: परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु इति मेघदूते ।" तमिस्र पक्षोऽपि सहप्रियाभि: ज्योत्स्ना वतो निर्विशति प्रदोषान्" इति रघुवशेऽपि (6-84) ।

तृतीय चरणे अनुप्रासालङ्कार: । नव-नव रतैरित्यत्र वीप्स्या । वैदर्भी रीति: । प्रसाद गुण: ।

हिन्दी अनुवाद --

कुछ देर कुशल मङ्गल पूछने में. फिर कुछ देर यक्षिणी द्वारा कही गई बातों से दुखी होता हुआ, फिर कुछ देर अपलक नेत्रों से नई नवेली यक्षिणी को देखता हुआ समय बिताकर सन्ध्या की शुभ वेला आने पर यक्ष क्रीडा-पर्यङ्क पर प्रिया का आलिङ्कन करता हुआ अथवा शोभित होता हुआ अथवा प्रिया के साथ खेलता हुआ रात में नये-नये सुरत व्यापारों से अपनी प्रिया के साथ भोग करने लगा ।

ये ये क्लेशा: सुमुखि विरहे ते मया सोढपूर्वा-
स्तानानन्दानुभवसमयेऽलं पुन: स्मारयित्वा
सम्प्रत्येकीभव सह मया प्राणवद्गोपनीये
भूयान्नैवम् पलमपिकदाप्यावयो विप्रलम्भ: ॥२॥

[टिप्पणी नास्ति]

पूर्वस्मिन् श्लोके यक्ष: यक्षिण्या: कथाभि: उत्कण्ठित: सन् दिनम् व्यत्येति। परम् संयोगसमयेऽपि विगतक्लेशानाम् स्मरणात् कथं स ग्लायेत्। अत: स: कान्तामालिङ्गयन् कथयति- ये ये क्लेशा: इति।

हे सुमुखि ! सुन्दर वदने मया विरहिणा यक्षेण ते विरहे वर्षभोग्ये शाप काले ये ये क्लेशा: उन्मादनतापनादीनि मन: सङ्ग सङ्कल्प जागरकृशतारति-ह्रीत्यागोन्माद मूर्च्छादीनि च कष्टानि सोढपूर्वा: पूर्वकाले शापावधौ सह्यानि अनुभूतानि, तानि आनन्दानुभव सम्प्रे अस्मिन् सम्प्राप्ते संयोगाज्जायमानानन्दा-नुभव काले पुन: स्मारयित्वा स्मरणङ्कारयित्वा अलम् व्यर्थम्। सम्प्रति मया सह एकी भव। आवयो: द्वयों: सतोरपि आलिङ्गनादिभि: शारीरै: तन्मयी भवनादिभि: मानसिकैश्च व्यापारै: एकरूपताम् प्रापय। अभूततद्भावेच्वि प्रत्यय: तस्मादेकीभवते: लोटि मध्यम पुरुषैक वचने एकी भवइति। हे प्राणवदगोपनीये ! यथा प्राणा: शरीरस्यान्त:-प्रदेशे प्रच्छन्ना: तिष्ठन्ति तेषु अगुप्तीभूतेषु वहिरागतेषु शरीरम् व्यर्थम् भवति, जीवन हानिर्भवति। एव मिव गोपनीया त्वमपि असि। त्वयि गतायाम् ममापि जीवनम् व्यर्थ मिति यक्षस्याभिप्राय:। आवयो: एवं विप्रलम्भ: प्रवासरूप वियोग: पलमपि क्षण-मपि। पल मुन्मानमान योरिति हैमात् अमराच्च यद्यपि नाथं शब्द: काल-मापक: तथापि ज्योतिषे लोके च कालमान वाचको दृश्यते। दशगुर्वक्षरो-च्चारण काल: प्राण:, दश प्राणा: पल इति।

तथा च ज्योतिस्तत्वम्—

"दशगुर्वक्षरोच्चारकाल: प्राणा: षडात्मकै:।
तै: पल: स्यात्तु तत्षष्ट्या दण्ड इत्यभिधीयते"॥

एवमल्पकाल मपि न भूयात्। मानविप्रयोग: भवतु अपि। तत्र न खेद इति।

प्राणवद्गोपनीये इत्यत्र परिकरालङ्कार:

हिन्दी अनुवाद—हे सुमुखि ! तुम्हारे विरह में मैंने जिन-जिन कष्टों को सहन किया है उन्हें इस आनन्द प्राप्ति के समय फिर से स्मरण कर क्या लाभ ! हे प्राण के समान छिपायी जाने वाली, इस समय तो मेरे साथ एकाकार हो जाओ। हम दोनों का ऐसा वियोग क्षण भर के लिए भी कभी न हो।

दुःखोदन्व[1] त्यति निपतनादा[2]धिरद्धो[3]दभू द्य
स्तस्योच्छेदः कथमपि मया दुःक्षमोमंक्षु कर्त्तुम् ।
मुग्धे ! दुग्धोदधिजवदने[4] ! धीयते[5] नाधुनाचे-
ज्जीवातुः[6] सा त्वदधर सुधा स्यान्मुधा जीवितास्मि ॥४॥

पुनः कथयति यक्षः दुःखोदन्वति इति । हे मुग्धे ! "मुग्धा नववयः कामारतौ बामा मृदुःक्रुधि,' इति धनञ्जयः । स्वीयानायिकासु वयःक्रमात् प्रथमवयोयुक्ता मुग्धा तत्सम्बुद्धौ रूपमिदम् । अत्र च दुग्धोदधिज बदने । दुग्धानि उदकानि धीयन्तेऽस्मिन् इति दुग्धोदधि तस्माज्जातः उत्पन्नः चन्द्रः तदिव वदनं यस्याः सा दुग्धोदधिजवदना तत्सम्बुद्धौ चन्द्रमुखि इत्यर्थः ! पुराणेषु चन्द्रमसः उत्पत्तिः क्षीरसागरात् वर्णिता । यथा—

'अत्रिनेत्र समुद्भूतं क्षीरोदार्णव सम्भवम्
नमामि शशिन भक्त्या शम्भोर्मुकुट भूषणम् ।" इति

दुःखोदन्वति दुःखमुदकंयस्य तस्मिन् दुःखसागरे । अत्र 'उदन्वानुदधौच" इति निपातनात् मतुप् । तथा भूते अतिशयेन निपतनात् यत् आधिः मानसी व्यथा अद्धा तत्वतः अतिशयेन वा उदभूत् अजायत । उदुपसर्गपूर्वकात् भवते लुंङि प्रथम पुर्षक वचने रूपमिदम् ।

तस्य मानसिककष्टस्य उच्छेदः विनाशः मंक्षु तत्कालम् "स्रग्झटित्यञ्जसाह्नाय सपतिद्राङ्मङक्षुद्रुते" इत्यमरः ! कथमपि कर्तुम् दुःक्षमः । दुःखेन क्षमं शक्तम् योऽसौ दुःक्षमः आधिरित्यस्य विशेषणम् : यदिचेत् सा त्वदधर सुधा तव अधरामृतम् जीवातुः जीवनौषधम्" ना जीवातुर्जीवनौषधम्" इत्यमरः । अधुना अस्मिन काले मया विरहजनितमानसिकपीडया युक्तेन मुमूर्षुणा यक्षेण न धीयते न पीयते । धेट् पाने इति धातोः आत्मनेपदे लटि प्रथमपुरुषक वचने । मुधा व्यर्थम् "व्यर्थकन्तु वृथा मुधा" इत्यमरः जीवितास्मि जीविष्यामि इत्यर्थः ॥

दुग्धोदधिजवदने इति परिकरालङ्कारः । चन्द्रमसि अमृतप्राप्त्यभिप्रायात् ,

हिन्दी अनुवाद—दुःख के समुद्र में गिरने के कारण वास्तव में जो अतिशय कष्ट उत्पन्न हुआ उसका नाश किसी तरह शीघ्र करने में मैं अस-

---

टिप्पणी—१. दुःख सागरे २. मानसी व्यथा ३. अद्धातत्वाथकमतिशयार्थकम्
४. चन्द्रमुखि ५. पीयते ६. जीवनौषधम् ।

मर्थ हूँ। अरी भोलीभाली ! चन्द्रमुखी ! इस समय यदि तुम्हारा अधरामृत ओषधि की तरह मैं नहीं पीता हूँ तो जीवित कैसे रहूंगा।

निःश्वासस्याप्यधिक खरतां योऽधरस्ते न सेहे-
ऽधीरोदध्यात् कथमिव तुलां पल्लवस्तस्य बालः।
बिम्बं निम्बोपममथरसे का सुधा पात पीता[1]
कान्ते स्वान्ते बहु कलयता तुल्यताऽपापि नाऽऽपि[2] ॥५॥

अथ यक्षः कान्तायाः अधरस्योत्कर्षातिरेकम् वर्णयति—निःश्वासस्या पीति। हे कान्ते ! यः अधरः निःश्वासस्यापि विरह जानितोच्छ्वासस्यापि अधिक खरताम् रुक्षताम् तापमित्यर्थः "खर स्यात् तीक्ष्ण-धर्मयोः' इति न सेहे। षह्र मर्षणे इति धातोः लिटि प्रथम पुरुषैक वचने। तस्य सुकोमलस्याधरस्य तुलाम् तुल्यताम् अधीरः धैर्य रहितः सतत चञ्चलाय मानः। अनेन पल्लवस्य अति कोमलता नवीनता च व्यज्येते। एवम्भूतः वालः नवीनः पल्लवः किसलयः कथमिव दध्यात् धारयेत् अपि च यत्तु तवाधरस्य तुलना कालिदासेन पक्व बिम्बाफलेन सह कृता "पक्व बिम्बाधरोष्ठी" इति मेघदूते। तदपि न। तत् बिम्बाफलम् तुण्डिकेर्याः फलम् बिम्बम् तु निम्बोपमम् निम्बफल सदृशम् तिक्तम्। तवाधरस्तु मधुर इति भावः। अथ रसे अधरस्यास्वाद्य विषये पात-पीता पातेन राहुणा पीता शोषिता सुधा अमृतम् का किम्भूता। सा सुधाऽपि राहुणा पीता सती क्षीणा अस्याधरस्योपमान भूता नास्ति। एवम् हे कान्ते ! स्वान्ते स्वमनसि" स्वान्त हृन्मानसं मनः" इति अमरःबहु कलयता बहुषु स्थलेषु गणयता तस्योपमान मन्विषता मया तुल्यता समता क्वापि कुत्र चिदपि नापि प्राप्ता अनुपमस्ते अधरः इति भावः।

"आधिक्यमुपमेयस्यो पमानान्न्यूनताऽथवा व्यतिरेकः" इति विश्वनाथोक्त लक्षणात् अत्र व्यतिरेकालङ्कारः॥

हिन्दी अनुवाद—तुम्हारा वह होठ जो साँस की गर्मी सहन नहीं कर सका, उसकी समता वह चञ्चल एव नया पल्लव क्या करेगा भला। उस अधर की तुलना बिम्ब फल (तिलकोड़) से भी नहीं हो सकती क्योंकि वह तो नीम के फल के समान कटु है। स्वाद में भी भला राहु के द्वारा पीया गया अमृत क्या ! हे प्रिये ! मैंने अपने मन में बहुत सोचा, उसकी समता नहीं पायी !

टिप्पणी—१. पातः राहुः। २. प्राप्ता

काय क्षेत्रे कमल मुखि ! ते मध्य मूर्धान्तराल
क्रीडावापी शुचि रस भरै: पूरिता मन्मथस्य
रोमाली नौः सुगठित कुचौ शातकुम्भौ च कुम्भौ
यत्राजस्रं विहरति मुदा मन्मनोराजहंस: ॥६॥

पूर्वास्मिन् श्लोके यक्ष: चुम्बनाभिलाषेण अधरस्य वैलक्षण्यम् वर्णयति। तत: आलिङ्गन कामनया अत्र गात्रम् वर्णयति कायक्षेत्रे इत्यादिना। हे कमलमुखि ! कमल मिव मुख यस्या: तत्सम्बुद्धौ। ते तव कायक्षेत्रे काय: शरीरम् तत्क्षेत्रम् कायक्षेत्र मिति तस्मिन्। यद्वा क: प्रजापतिर्देवतास्य इति काय:। कस्येत् इति अणि प्रत्यये इदन्तादेशे च काय: ब्राह्म इत्यर्थ: तत्क्षेत्रे मध्यमूर्द्धान्तराले मध्यश्च मूर्द्धा च मध्यमूर्द्धानौ तयोरन्तराले मध्ये शिरस: नाभिपर्यन्त मित्यर्थ:। मन्मथस्य कामदेवस्य ीडा वापी क्रीडायै वापी उप्यते पद्माद्यस्याम् इति व पी कमलयुक्ता दीर्धिका इत्यथ:। शुचिरस भरै: शृङ्गाररसातिशयै: पूरिता अस्ति तस्यां वाप्यां रोमाली रोम्णामाली पद्धित: नौ: नौका अस्ति। अत्र रोमालिवर्णनात् यक्षिण्या: पद्मिनीत्वम् व्यज्यते। नाभि प्रदेशा दूर्ध्वंम्प्रयाता रोमावली नौरिवे प्रतिभातीति अर्थ:। अथ च सुगठित कुचौ सुगठितौ चाम् कुचौ स्तनौ कुम्भौ शत कुम्भे नाम पर्वते भवौ कुम्भौ घटौ। शत कुम्भ पर्वते उत्पन्नत्वात् तयो: हिरण्मयत्वम् ह्यत: शातकुम्भम् सुवर्णमिति। नाव:नीचै: उभयो: पार्श्वे द्वौ घटौ अधोमुखौ संलग्नौ क्रियेते येन सन्तरणे न काचिदपि बाधा भवति, किञ्चन्निमज्जना दपि भय न भवति। तादृशौ कुम्भौ इव कुचौ इति भाव:। अथवा, शात: निशित: शो तनू करण इति धातो:। अथवा, शात: कुम्भ: हस्तिन: मूर्द्धांश: यस्या सौ शात कुम्भ: तौ करिशावकौ इत्यर्थ:। करिशावकस्य मूर्द्धांशस्य कृशत्वात्। तत्र कीडावाप्याम् द्वौ करिशावकौ अपि जलमग्नौ स्त: इति भाव:। तयो: कुम्भौ एवं उन्नतौ स्त: इति भाव:। अत्र प्रथम पक्षे स्तनयो; स्वर्णघटयो-रारोप;। सभङ्गपक्षे तु करिशावकयो: मूर्द्धांशयो: कुम्भयोश्चारोपौ। एव-भूतायां मन्मनोराज हस; मुदा हर्षेण मुद हर्षे इति क्विपि सर्वांयहारलोपे तृतीयेक वचने रूप मिदम्। विहरति लीलया चलति।

काय: ब्राह्म: इति पक्षे ब्रह्मण: मानसरोवरे राजहंस: विहरति इति भाव:। तेन श्लेषानुप्राणिता वाचकलुप्तोपमा। श्लेषालङ्कार:। रूपकालङ्कार:।

टिप्पणी–१. शुचि: शृङ्गार: पूतश्च।

अनुवाद—हे कमलमुखि ! तुम्हारे शरीर रूपी भूमिपर (अथवा, ब्रह्म क्षेत्र में) मुख से लेकर नाभि पर्यन्त शृङ्गार रस से लबालब कामदेव का क्रीड़ा सरोवर है। वहाँ रोमावली रूपी नाव है तथा दोनो स्तन सोने के दो घड़े हैं। अथवा, करिशावकों के दो पतले शिर है जहाँ मेरा मन रूपी राज-हंस हर्ष से लगातार अठखेलियां कर रहा है।

दृष्टी दृष्टि:[1] प्रचलितमभूत्कामयुद्धन्तु यूनो:
हस्ताहस्ति: प्रथितमभवत्तत्क्षणादेव यत्र
पादाघातानखरदशनातिक्षतान्याविरासन्
मध्यस्थानां लघुसमुचितं सन्धिकृत्यं हि तत्र ॥७॥

अत्र उभयो: कामयुद्धं वर्णयति-दृटीदृष्टिरिति। यत्र शयनीये दृष्टी दृष्टि: दृष्टिभ्यां दृष्टिभ्यां प्रहृत्येदम् युद्धम् प्रवृत्तम् इति यूनो: यक्षिणी यक्षयो: कामयुद्धं कामाय इच्छार्थम् युद्धम् प्रचलितमभूत्। तत्क्षणादेव हस्ताहस्ति: हस्ताभ्याम् हस्ताभ्याम् प्रहृत्येदम् प्रवृत्तम् युद्धम् प्रथितम् ख्यातम् अभवत्। हस्ताहस्तिरित्यादिना करताडनमुक्तम्। यदुक्तञ्च अनङ्गरङ्गे—

"कामयुद्धाङ्कयुद्धे स्यात् करताडन सीत्कृते
तत्ताडनम् चतुर्धास्यात् सीत्कृतम् पञ्चवास्मृतम्।
प्रस्तृतेनापहस्तेन मुष्टिना समपाणिना" इति।

तत्र यद्यपि पादाघाता: न नहि आसन्। पादाघातास्तु रौद्रयुद्धे भवतीति। तथाऽपि आवि: स्फुटम् खरदशनातिक्षतानि खरै: तीक्ष्णै: दशनै: दन्तै: अतिक्षतानि अङ्गानि आसन्। उन्मत्तावस्थायाम् चुम्बननखदानादिभि: क्षतानीत्यर्थ:। यद्वा विपरीत रतौ पादाघातोऽपि शास्त्रसम्मत:। तस्मात् पादाघाता: आसन् इति। नखरदशनातिक्षतानि नखरै: नखै: नखदानात् इति दशनै: दन्तै: अतिक्षतानि अङ्गानि आविरासन् इति। तत्र कामयुद्धे मध्यस्थानाम् मध्ये स्थितानाम् स्तनोरसादीनाम् अङ्गानाम् लघुसमुचितम् लघु अल्पञ्च समुचितम् सन्धिकृत्यम् परस्परयोग कार्यम् हि आसीत्। यक्षिण्यां स्तनयो: पीनत्वात् अल्पम् सन्धिकार्यम्। अनेन कामयुद्धाङ्क सञ्ज्ञम् सुरतम् वर्णितम्।

अनुवाद–आँखें लड़ाने का प्रेमयुद्ध (कामयुद्धाङ्क नामक) चलने लगा। उसी समय हाथापाई भी होने लगी। पैरों से चोटें पड़ने लगी (अथवा,

---

१. दृष्टिभ्यां दृष्टिभ्याम्प्रहृत्येदं युद्धं प्रवृत्तम्।

यद्यपि पैरों से आघात नहीं हो रहे थे) फिर उस कामयुद्ध में नाखून एवं दाँतों के स्पष्ट चिह्न अङ्गों पर झलक रहे थे। (यक्ष और यक्षिणी) के बीच वाले अंगों का (स्तन, हृदय आदि का) थोड़ा-थोड़ा किन्तु समुचित संयोग हो रहा था।

रम्ये हर्म्ये ललित ललितं श्रेयसीं प्रेयसं सोऽ-
जस्रःक्रम् : प्रहर परम नेहसं[2] सन्प्रयुञ्जन्[2]
शापान्मुक्तोऽप्यहह दयिता बाहु पाशात्सुबद्ध—
स्तृप्तोनीषत्सुरत निवहादात्मनो नाप मुक्तिम् ॥८॥

रम्ये हर्म्येइति। सः काम्रः कामुकः "कम्रः कामयिताभीकः कमनः कामनोऽभिकः" इत्यमरः। यक्षः रम्ये रमणीये हर्म्ये प्रासादे अजस्रम् ललित ललितम् ललितादपिललितम् अति सुन्दरम् प्रेयसं प्रहरपरमानेहसम् प्रहर पर्यन्तकालम्—"कालोदिष्टो प्यनेहरापि" इत्यमरः। श्रेयसीमतिशोभनाम् प्रियाम् यक्षिणीम् सम्प्रयुञ्जन् सम्मेलयन् युजिर योगे इति धातोः सम्प्रोपसर्ग पूर्वकात् शतृप्रत्यये। सम्भोगम् कुर्वन् इति। प्रहरपरमानेहसमित्यत्र 'कालाध्वनो रत्यन्तसयोगे' इति द्वितीया तेनफल प्राप्तेरभावः सूचितः अन्यथा अपवर्गे तृतीया स्यादिति। यद्यपि दिव्यनायकयो, सुरतः प्रहरावधिकः। यत्सूचितम् कालिदासेनापि "अन्वास्यैनां स्तनितविमुखेत्यादिना। किञ्च रतिसर्वस्वेपि—

एक वारावधिर्यामो रतस्य परमोमतः
चण्डशक्तिमतो यूनोरुद्भट क्रम वर्तिनो, ॥

परम् चिरबियोगात् उत्कण्ठितः यक्षः परम कालमपि योगात् तुष्टि न लभते "तद्वर्णयति उत्तरार्द्धे-अहह ! शापात् मुक्तः वियोग कारणात् मुक्तः सन् अपि सुबद्धः प्रियायाः बाहुपाशे बद्धः सुरतनिवहात् सम्भोगसमूहात् "समूह निवह व्यूह सन्दोह विसर प्रजाः" इत्यमरः विभिन्न प्रकारकेभ्यः सुरतेभ्यः इत्यथः। अपि इषत् अल्पम् तृप्तः न पूणतया इति।

---

1. दिव्यनायकयो; सुरतस्य प्रहरा वधिकत्वतात् तदे तत्सूचितम् मेघदूते—"अन्वास्यैनां स्तनित विमुखो याम मात्रं सहस्वे"ति।

2. सुरतङ्कुर्वन् रतं रहः शयनम्मीहनञ्चेति सुरतपर्यायाः इति वात्स्यायनः।

दयिता वाहुपाशात् दयितायाः प्रियायाः यक्षिण्याः बाहू भुजौ एव पाशः बन्धः तस्मात् प्रियायाः आलिङ्गनात् इति आत्मनः स्वस्य यक्षस्य मुक्तिम् बन्धनराहित्यम् न आप प्राप्तो बभूव। अनेन आलिङ्गनस्य दाढ्र्यम् व्यज्यते। यद्वा आत्मनः मुक्तिम् दुःखान्निवृत्तिम् नाप इति।

शापान्मुक्तोऽपि मुक्तिम् नापइत्यत्र विरोधालङ्कारः।

हिन्दी अनुवाद—वह कामी यक्ष रमणीय प्रासाद पर अति सुन्दर एवं सुखद समय में एक पहर तक अति सुन्दरी प्रिया यक्षिणी के साथ सम्भोग करता हुआ शाप से मुक्त होकर भी प्रिया के वाहुपाश में बँधा हुआ भी प्रचुर सम्भोग के बाद भी थोड़ा ही तृप्त हुआ उसने प्रिया के वाहुपाश से मुक्ति नहीं पायी अथवा प्रिया के बाहुपाश से बँधे रहते के कारण आत्मा की मुक्ति अर्थात् निरपेक्ष सुख की प्राप्ति एव दुःखों का पूर्ण उच्छेद उसे प्राप्त नहीं हुए।

सौधाग्रेऽद्धाऽशकलितसुधादीधितेः पाद पूते
शुभ्राभ्राभावरणवलिते[1] सत्कुथे[2] स्वास्थ्य कामः।
श्रान्तां कान्तां मृदुमृदु पदोर्मर्दयन्वीक्ष्य दृष्ट्या-[3]
ऽवाच्योदीच्यौघट भव मुनी[4] सप्रियौ[5] प्राददर्शत् ॥६॥

अथ सम्भोगावसान वणयति सौधाग्रेद्धा इति। अशकलितः न शकलितः खण्डितः 'भित्तं शकल खण्डे वा" इत्यमरः पूर्णः इत्यर्थः! अशकलितश्चासौ सुधादीधितिः सुधा युक्ताः दीधितयः यस्यतस्य सुधांशोः पूर्णचन्द्रस्य इति पाद पूते पादैः रश्मिभिः "पादाः रश्म्यङ्घ्रितुर्यांशे" इत्यमर। पूते पवित्री कृते सौधाग्रे सौस्यस्य सदनस्य इष्टिकाभिर्निमितपः यद्वा सुधालेपः यस्यास्तीति सौधः। ज्योत्स्नादित्वादजि प्रतिपत्ति;। 'सुधा स्त्री लेपने मूर्व्वा स्नुहि गंगे ष्टकामृते" इति कोशः। तस्याग्र उपरि प्रदेशे अद्धा अतिशयेन शुभ्राभ्रा-

टिप्पणी—1. स्वच्छमेघच्छपि बस्त्रावृते (उलोंच) 2. महाहृरिस्तो मे (गद्दी) 3. श्रमापनोदार्थम्, उक्तञ्च–सम्भोगान्ते हस्तसंवाहनानि। 4. दक्षिणोत्तर दिग्भवौ अगस्त्यवसिष्टौ। 5. लोपामुद्रारुन्धतीभ्याम् सहितौ। उक्तस्च साम्प्रयोगिकाऽधिकरणे रताबसानिके वात्स्यायनेन-हर्म्यंनतस्थितयोर्वा चन्द्रिकासेवनाथंमासनम्। तत्रानुकूलाभिः कथाभिः अनुवर्तेत। तदङ्क संलीनायाश्चन्द्रमस पश्यन्त्याः नक्षत्र पङ्क्ति व्यक्ती करणम्। अरुन्धती ध्रुवसप्तर्षिमालादर्शनञ्चेति। एतेनोत्तर श्लोकोऽपि व्याख्यातः।

भावरणवलिते शुभ्रश्चासौ अभ्र: मेघ, तस्य आभा छवि: यस्यावरणस्य शय्याभरणस्य तेन वलिते आवृते उल्लोंच इत्यनेनाच्छादिते सत्कुथे महार्हपरिस्तोमे ,प्रवेणास्तरणं वण: परिस्तोम: कुथोद्वयो:" इत्यमर:। स: स्वास्थ्य काम: स्वास्थ्यम् रतिश्रान्त्यापनोदनम् कामयतेऽसौ श्रान्ताम् रतिजनितखेद-खिन्न म् दीर्घश्वासादियुक्तामिति भाव:। प्रियाम दिव्य दृष्टया क्रीडा दृष्टया पदो: पादयो: मृदु मृदु कोमल मर्दयन् संवाहयन् मृदु मृदु इति क्रिया विशेषणम् तद्गतिम मेघदूत–सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानाम्" इति। अभिज्ञान शाकुन्तलेऽपि–" अङ्के निधाय करभोरु यथा सुखन्ते सवाहयामि चरण वुत पद्मताम्रौ ' इति एव प्रिय। सवाहयन् स यक्ष: आवाच्योदीच्यौ अवाच्याम् दक्षिणस्यां दिशि भव: अवाच्य तथा च उदीच्याम् दिशि भव: उदीच्य.नौ दक्षिणोत्तरदिग्भवौ इति। घटभव मुनी घटे समाधिभेदे "घट: समाधिभेदेना" इति मेदिनी तस्मिन् भवौ स्थितौ मुनी अगस्त्य वसिष्ठौ सप्रियौ प्रियाभ्याम् यथा सङ्ख्येन लोपामुद्रीरुन्धतीभ्याम् सहितौ आदर्शत्। तत्र व सिष्ठ स्थिति: उत्तस्याम् दिशि सप्तर्षिमण्डले। यथा चोक्तम्—

मरीचिरङ्गिरा अत्रि: पुलस्त्य: पुलह: क्रतु:
वसिष्ठश्चेतिसप्तैतेज्ञेयाश्चित्र शिखण्डिन:॥

तथा चागस्त्योदय: दक्षिणस्यां दिशि–उदयन्तेलङ्काद्वारे इत्यादि मन्त्रेणाभिधानात्।

हिन्दी—पूर्ण चन्द्र की किरणों से पुते हुए प्रासाद के उपर श्वेत मेघ के समान आभा से युक्त चादर से ढँके हुए गद्दे पर सम्भोग के बाद थकान मिटाने की इच्छा करता हुआ, थकी हुई प्रिया यक्षिणी को खेल-खेल में दोनों पैरों को सहलाता हुआ यक्ष ने दाक्षणी एव उत्तरी क्षितिज पर घट मुद्रा में स्थित प्रिया (लोपामुद्रा एव अरुन्धती) के साथ दो ऋषियों को (क्रमश: अगस्त्य एवं वसिष्ठ को) दिखलाया।

अङ्के कृत्वा कथमिव कलाकोविद: कामुकोऽसौ
कान्ताङ्गं किमपि कुतुकाद्वक्तु काम: करेण।
दर्शं दर्शं शशधरममुं रोहिणी श्लिष्ट बिम्बं-
शङ्काकोदितमुपरिगं, कान्तितोऽधश्चकार॥१०॥

टिप्पणी नास्ति

अङ्के कृत्वेति । असौ कामुक: रमणाभिलाषी कलाकोविद: ललित कला भिज्ञ: यक्ष: कान्तां प्रियाम् कथमिव केनापि प्रकारेण मुग्धां सुलभलज्जयाऽङ्का रोहणात् अपवारयन्तीम् नहि नहीति कथयन्तीम् केनापि प्रयासेन अङ्के कृत्वाक्रोड निधाय कुतुकात् कौतूहलात् तस्या: कर्णे किमपि वक्तुकाम: सुरताऽरम्भगोष्ठयाम् यथा विहितं द्वयर्थैः पदैः रहस्यवस्तुससूचनम् तद्वक्तुमभिलषन् कान्ताया: चित्तम् अन्यतो निवर्त्य एकाग्रीकर्त्तुम् अतएव करेण एकेन हस्तेन-अपरस्य आलिङ्गने व्यापृतत्वात् एकेनैवेति । उपरिग उच्चै:स्थितम् राकोदितं राकायां निशि उदित उद्गत रोहिणीश्लिष्ट बिम्बं रोहिण्यां चन्द्रभार्यया श्लिष्टमालिङ्गितं बिम्बं मण्डल यस्य तथा भूतमम्पुरो दृश्यमानं शशधर शशलाञ्छन धारिणम् चन्द्रमस दर्शं दर्शं पुन: पुन: दर्शयित्वा कान्तित: स्वद्युत्या अधश्चकार अध: कृतवान् । इति शङ्के एव शङ्का जायते ।

उपरिगं रोहिणीश्लिष्ट बिम्बं चन्द्रमसमुपमानभूत यक्षिणयाश्लिष्टप्रभ: स्वमुख-लावण्येन यक्ष: उपमेयभूत: न्यक्कृतवान् इति उपमानादुपमेये उत्कर्षात् व्यतिरेक: । 'आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्यूनताऽथ वा व्यतिरेक: इति विश्वनाथ: । इति शङ्के इत्युत्प्रेक्षा । उभयोरङ्गाङ्गिभावात् सङ्कर:

हिन्दी— कामकला में पारगत कामुक यक्ष ने अपनी प्रिया को किसी प्रकार गोद में बिठा कर कान में कौतुक से कुछ कहने के लिए एक हाथ से रात में उपर उगे हुए रोहिणी (चन्द्रमा की भार्या) से घिरे हुए (आलिंगित) बिम्ब वाले चन्द्रमा को दिखला-दिखला कर जैसे उसे अपनी कान्ति से धिक्कार रहा था ।

स्तोकं स्तोकं कर किसलयेनाद दानाय हालां[1]
पायं पायं प्रियतमममुं साहकार्येण[2] बाला ।
प्रत्यासन्ने हिमवति ऋतावाप्य कृच्छ्रेण साक्षाद्
भूयो भूयो मधुपपदवीं लम्भयामास भव्या ॥११॥

टिप्पणी—"सुरा हलि प्रिया हाला' इत्यमर: : अस्य देशभाषा पदत्वऽपि कविभिरति प्रयुक्तत्वान्निबन्धो न दोषाय । तथा च वामन:– "अतिप्रयुक्त देशभाषा –पदम्" इति । प्रयोक्तव्यमितिशेष: । तथा च माघ:- योषिदित्यभिललाष न हाला मिति । 'हित्वा हालामभिमत रसा मिति कालिदास: । २. सह कारोति सौरभ आम्रस्तस्य भावेन, सह कारित्वेन वा ।

अथ यक्षिण्याः मदिरापानं गण्डूष सेकार्थम् वर्णयति स्तोकं **स्तोक** मिति। बाला मुग्धा यक्षिणी करकिसलयेन करपल्लवन। करयोः पल्लवस्या-रोपः। तेन कोमलत्वम् रक्तिमत्वञ्च व्यज्येते। करपल्लेव पुटक निर्माय अञ्जलि बद्धवा इत्यर्थः, दानाय त्यागाय न तु आत्मसात् गण्डुषसेकार्थ-मित्ययः। हालाम् सुरामल्पमल्पमाद पपौ। अद्भक्षणे। लिटि प्रथमपुरु-षैक वचने। ततश्च साहकार्येण सहकारोति सौरभ-आम्रस्तस्य भावेन सह-कारवत् इति, यद्वा-सहकारित्वेन अमुं प्रियतमम् अधरपानाय इच्छुकम् वल्लभम् यक्षं पाय पुनः पुनः पायहित्वा स्वमुखपाय्येन पाययित्वा इति। पाधातोः णिचि आभीक्ष्ण्येणमुलि रूपमिदम्। वर्णितमपि माघेन--

"स्वादनेन सुतनोरविचारा दोष्ठतः समचरिष्ट रसोऽत्र अन्य मन्यदिव यन्मधुयूनः स्वादमिष्टमतनिष्ट तदेव" तस्मात् हिमवात ऋतौ हिम तुषार-मास्त अस्मिन् इति हिमवान् तस्मिन् हिमवति हेमन्ते मासद्वयात्मके काले प्रत्यासन्ने सन्निकट वर्तिनिस्थिते। यस्य च भावेन भाव लक्षणम् इति सप्तमी। सत्यपि अकृच्छ्रेण कष्टे न विना, जाड्यादिक विना अथवा मधु सञ्चयार्थम्। पुष्पाणाम भावेऽपि अभाव बोध विना सा भव्या सुन्दरी भूयः भूयः पुनः पुनः साक्षात् तुल्यत्वात् "साक्षातुल्य समक्षयोः"–इति मेदिनी। स्वयं मधु निपीय पश्चादन्यार्थे दानम् उभयो; तुल्यम्। एवं सा मधुप-पदवीं मधुपिवतीति मधुपः तस्य पदवीं उपाधि यद्वा रूढितः भ्रमरः तस्य पदवीं लम्भयामास।

स्तोकं स्तोकम्, पायं पायम्, भूयो भूयो इति वीप्सा। साहकार्येणेत्यत्र श्लेषः।

हिन्दी—सुन्दरी बाला (मुग्धा) यक्षिणी ने दान (त्याग) के लिए (मुख शुद्धि हेतु कुल्ला करने के लिए) या प्रिय को मुख द्वारा देने के लिए अपने कर पल्लव से थोड़ी-थोड़ी मदिरा का पान किया। स्वय सुगन्धित मञ्जरित) आम बनकर या सहायिका बनकर अपने इस प्रियतम को पुनः पुनः मदिरा (अपने मुखस्थ) पिला कर निकटवर्ती (आगे आने वाले) हेमन्त ऋतु में भी (सहकार के अभाव-समय में भी) आसानी से साक्षात् बारवार मधुप पद को प्राप्त कराया।

पत्याऽऽघात्ये मधुरमुखरे पुष्करे वाक्प्रवीणा
वीणामेणीनयन तरुणी, वारुणी घूर्णिताङ्क्षे।

कोण प्रान्तै[1]र्लघु लघु तथाऽवादयत्सा यथाद्धा
ताल कांस्या इव समददुः कङ्कणानि क्वणन्तः ॥१२॥

अथ वीणावादनं वर्णयति **पत्याऽऽघात्ये** इति। सा पर्यङ्के यक्षेण सह विलास प्रवृत्ता यक्षिणी वाक्प्रवीणा वाचिव्यक्तवचने प्रवीणा निपुणा। प्रकृष्टो वीणायाम् इति। नैपुण्यार्थे रूढा लक्षणा। अनेन यक्षिण्याः गान कौशल व्यज्यते।

एणीनयन तरुणी एणी मृगी "गो कण पृषतैणर्श्यरोहिताश्चमरो मृगाः" इत्यमरः। एणीइव नयने यस्याः एणीनयना। सा च तरुणी एणीनयन तरुणी अनेन यक्षिण्याः नयनयोः चाञ्चल्य कामवतीत्वञ्च व्यज्येते। "चकित हरिणी प्रेक्षणं दृष्टिपातम्" इति कालिदासेनाऽपि मेघदूते वर्णितम्। तथा च वारुणी घूर्णिता वारुण्या मद्येन घूर्णिता चञ्चलशरीरा मद्यपानात् समुपजात मदेन भुजादिविक्षेपयुक्ता सा यक्षिणी मधुर मुखरे मधुरञ्च तन्मुखरम् तस्मिन् मधुर बहुभाषिणि पुष्करे वीणामुखे प्रसेवके वीणादण्डाधःस्थित चर्मावनदारुमयभाण्डे यत्र वीणा वादनाय आघातः क्रियते तत्र पत्या यक्षेण आघात्ये आघातमर्हति इति आघात्यः तथा भूते सतिताडिते सति इत्यर्थः। कोण प्रान्तैः कोणस्य वीणावादनस्य धनुराद्या कृतिसाधनस्य "कोणं वीणादिवादनम्" इत्यमरः। तस्य प्रान्तैः एकदेशैः तन्तु प्रदेशः लघु लघु शनैः शनैः अङ्के स्वस्योत्संगे स्थितां वीणां तथा तेन प्रकारेण हस्तसञ्चालनेन अवादयत् यथा अद्धा तत्वतः कङ्कणानि प्रकोष्ठाभरणानि क्वणन्तः ध्वनिं कुर्वन्तः कांस्याः इव कांस निर्मिताः झल्लर्यः इव तालं समददुः। सम्यक् प्रकारेण अददुः।

कांस्याः इव तालं समददुरित्यत्र उपमाऽलङ्कारः।

हिन्दी—बोलने चतुर, हरिणी के समान आँखों वाली तरुणी जो मद्य पीने के कारण झूम रही थी ऐसी यक्षिणी ने पति के द्वारा सुन्दर और बहुत गूंजने वाली वीणा की तुम्बी पर ताग छेड़ दिये जाने पर मेजराफ के एक कोने से गोद में रखी हुई वीणा को इस तरह धीरे-धीरे बजायी जैसे हाथों के खनकते हुए कँगने झाल की तरह ताल दे रहे हों।

यस्यां रात्रिस्प्रिय विरहिता त्राटकेन[1] क्षमाणा
निद्राहीना कठिन कठिनं क्षोणि पृष्ठे लुठन्ती।

---

१. वीणा पादनैक देशे मेजराफ।

१. मुद्रा विशेषेण यत्र निर्निमिषं दृश्यते।

आली वाक्यैरपि परिपलं बोधितानैव नेक्तुम्
शक्ता सैषा दयित युतया सोत्सवं नीयतेस्म ॥१३॥

अथ यक्षिण्या: सुरतोत्सव वर्णयति-यां यां रात्रिमिति । प्रिय विरहिता प्रियात् यक्षात् दूरीभूता अतएव निद्राहीना जागरणकयुक्ता त्राटकेन निर्निमिष दृष्टिरूपेण मुद्राविशेषेण या यां यादृशीम् विरहात् भयङ्करीं रात्रि क्षमाणा सहन्ती । प्रिय वियोगात् रात्रेर्दैर्घ्यादिक सहन्ती इति । किञ्च कठिन कठिनम् कठिनादपि कठिनम् अतिकठोरम् परिपल प्रतिक्षणम् । विरहात् क्षणस्य काठिन्यम् । क्षोणि पृष्ठे क्षोणी पृथ्वी तस्याः पृष्ठे तले प्रापितपातकाया: पयङ्कशयन निषेधात् । लुठन्ती पुन: पुनः भूमौ प्रतिघातयन्ती । लुठ् प्रतिघाते इति शतृ प्रत्ययेऽपि प्रथम पुरुषैक वचनान्तम् । आली वाक्यैरपि सखीभि: सान्त्वनायै उक्तै: वचनैरपि बोधिता उक्तासती आत्मान नेक्तुम् परिमार्जितुम् स्वस्थीकर्तुम् । णिजिरशौचे इतिधातो: तुमन् प्रत्यये । नैव शक्ता क्षमा, सम्प्रति सा सभागका न सम्प्राप्ता एषा रात्रिः दयितयुतया दयितेन प्रियेण यक्षेण युतया संयुक्तया यक्षिण्या सोत्सवेन उत्सवेन सहितम् नीयते स्म व्यतीयते स्म ।

अत्र पर्यायालङ्कार: । तल्लक्षणम् वेणीदत्त कृताऽलङ्कारमञ्जर्याम्—

"सम्बन्ध: स्यादनेकत्र क्रमेणैकस्यवस्तुन:
यस्त पर्यायनामानमलङ्कारं प्रचक्षते ।

हिन्दी—प्रिय के विरह में निन्द्राहीना अपलक दृष्टि से उस यक्षिणी ने जिस भयानक रात को कष्टपूर्वक पृथ्वी पर लोटती हुई सहन कर ली, और सतत सखी के धैर्य दायक वाक्यों से सांत्वना पाने पर भी अपने को स्वस्थ न कर सकी आज उसी प्रकार की (भयानक) रात को प्रिय के समागम से उल्लास पूर्वक बिता रही है ।

रत्यन्ते यद्विलुलितमभूत्कैश्य[1] मत्यन्त शस्यम्
सम्प्रत्यक्षा(क्ष्या) वरण करणाद्दृश्यते तद् ध्यवश्यम्
नैवद्वेषो(ष्यो) नच खलु सुहृत्कोऽपि कस्याप्यकस्मात्
स्वस्याचाराद्भजति हि जनो गर्हणामर्हणां वा ॥१४॥

१. कैश्य केशानां समूह:, "केशाश्वाभ्यां यञ् छावन्यतरस्यामितियञ्" ।

रत्यन्ते इति । रत्यन्ते सम्भोगान्ते यत् कैश्यम् केशानां समूहः अन्यन्त-शस्यं पूर्णतः धान्यगुच्छस्वरूपम् विलुलितमभूत् विमर्दितमभूत्–सम्भोगे कचग्रहात् । तत् कैश्यम् सम्प्रति अक्ष्यावरण करणात् दृष्टयवरोधकत्वात् यद्वा अक्षावरणकरणात् अक्षस्य सपस्य भ्रूभगस्य "रुद्राक्षेन्द्राक्षयोः सर्पे विभीतकतरावपि" इति मेदिनी । तथा चात्र भ्रूभगे सर्पस्यारोपः । तस्य चाञ्चल्यात् कृष्णत्वात् तापनत्वाच्च । वर्णितमपि प्रकृतकाव्ये एकविंशतितमे श्लोके-पीत्वा पीत्वातव मुख विघोरित्यादौ! एवमत्र साध्यवसानलक्षणयाऽभि-धानम्! एवम्भूतस्य तस्य भ्रूभंगस्यावरणकरणात् । तद्धि कैश्यम् अवश्यम् निश्चितम् बद्ध्यते बद्धं क्रियते । यतोहि नैव द्वेष्यः शत्रुः यद्वा द्वेपः द्वेष्टि इति न च खलु सुहृत् मित्र कोऽपि कश्चिदपिजनः कस्यापि अकस्मात् अका-रणात् भवति । किन्तु स्वस्याचाराद् आत्मनः व्यवहारात् जनः गर्हणाम् निन्दनीयताम् अर्हणाम् पूजनीयताम् वा भजति प्राप्नोति ।

अत्रार्थान्तरन्यासालङ्कारः । "सामान्य वा विशेषो वा यदन्येन समर्थ्यते । यत्र सोऽर्थान्तरन्यासः साधर्म्येणेतरेण वा" इति तल्लक्षणम् ।

हिन्दी—सम्भोग के अंत में जो धान की बालियों के समान केशों का जूड़ा कुचला गया था अब दृष्टि के अवरोधक या भौह रूपी सर्प का आवरक (पर्दा) होने के कारण निश्चय ही बाँध डाला गया है । कोई भी किसी का मित्र अथवा शत्रु अचानक नहीं हो जाता । अपने व्यवहार से व्यक्ति पूजा अथवा निन्दा का भागीदार होता है ।

वारं वारं रहसि रमयन्नागतो विप्रयासा-
दाश्वास्य स्वां प्रिय सहचरीं राजराजानुयायी[1] ।
अग्रामीणाम्परिमित कथां मूढभावानु बद्धां
मुग्धामद्धा रुचिर वचनो वाचमेनामुवाच ॥१५॥

वारंवारमिति । बिप्रयासाद् अत्यायासपूर्वकम् आगतः प्राप्तः वारं वारं पुनः पुनः रहसि एकान्ते रमयन् यक्षिणीमानन्दयन् राजराजानुयायी कुबेर-स्यानुचरः यक्षः रुचिरवचनः रुचिर वचनं यस्यासौ स्वां स्वकीयां प्रियसहचरीं प्रियाचासौ सहचरी रतौ अनुकूला ताम् आश्वास्य 'व्यवगतोवियोगकालः

१. कुबेरानुचरो यक्षः । तथा च काव्यालङ्कारसूत्रे वामनः—
"विशेषणमात्र प्रयोगो विशेष्य प्रतिपत्तौ" इति । यथनिधानगर्भामिव सागराम्बरामिति कालिदासप्रयोगे ।

इत्यादिभिर्वचनैः सान्त्वनां कृत्वा अग्रामीणाम् ग्राम्यादि दोष रहिताम् परिमितकथां संक्षिप्तकथनात्मिकां सुरत गोष्ठताम् विस्तृत वार्तालापस्य निषेधाद्गूढभावानुबद्धां गम्भीर भावयुक्ताम् शुद्धाम् करुणरौद्र बीभत्सादिभिः विपरीत रसैः व्यवच्छिन्नाम् एनाम् एवम्भूताम् उत्तरश्लोके वर्ण्याम् वाचम "बाले ! वक्त्रन्तव विकलुषमित्यादिवाणीम् अदधा तत्वतः उवाच ।

हिन्दी—विशेष प्रयास से पहुँचा हुआ कुबेर का अनुचर यक्ष ने एकान्त में बार-बार यक्षिणी को आनन्दित करता हुआ अपनी प्रिय सहचरी को आश्वस्त कर ग्रा य दोषों से रहित संक्षिप्त एवं गूढ़ भाव से युक्त शुद्ध बाणी के द्वारा यह (आगे कही जानेवाली) बात कही ।

बाले ! वक्त्रन्तव विकलुषञ्चन्द्रमुत्प्रेक्ष्यपूर्ण-
ङ्ग्रस्त्यै पातस्त्वरितमपतत्केशपाशापदेशात् ।
त्वञ्चेदानीं लकुचितकुचे ! पाणिनोदगृह्य राहु-
ञ्चौरङ्कारञ्चिकुर निकरम्पृष्ठ बन्धम्बधान ॥१६॥

अथ यक्षः यक्षिण्याः मुखस्तनाद्यावरकं चिकुरनिकरं पृष्ठप्रदेशे प्रसाधयितुम् कथयति-बाले ! वक्त्रन्तवेति । हे बाले ! मुग्धे ! तव वक्त्रम् मुखं विकलुषं चन्द्रमुत्प्रेक्ष्य आशङ्क्य ग्रस्त्यै भक्षणाय । ग्रसु अदने इति धातोःक्तिन् प्रत्यये ग्रस्तिः, तादर्थ्ये चतुर्थ्याम् । पातः राहुः केशपाशापदेशात् कुन्तलनिकर व्याजेन त्वरितमपतत् । मुखमाच्छाद्यचिकुर निकरः तथा तिष्ठति यथा पूर्णचन्द्रमावृणोतिराहुः ग्रहणकाले इति भावः । राहोः पापग्रहत्वात् तस्य कृष्णत्वम् ! तेनचिकुर निकरस्य सौन्दर्यातिशायिनी कृष्णता व्यज्यते । हे लकुचित कुचे ! लकुचफलाकारकुचशालिनि ! लकुचः 'बडहर' इति प्रसिद्धम् फलम् तदिव सञ्जातः लकुचितः । तदस्यसञ्जातं तारकादिभ्य इतच्' इति इतचि । तारकादीनामाकृतिगणीयत्वात् । लकुचितौ कुचौ यस्याः तत्सम्बुद्धौ । इदानीम् अधुना राहु इवाचरति चिकुर निकरे त्वम् चिकुरनिकरं केशपाशं पाणिना उद्गृह्य ऊर्ध्वंगृहीत्वा राहुं केशपाशापदेशात् पतन्तम् ते मुखचन्द्रसुधापायिनम् पापग्रहं चौरङ्कारम् चौर ! चौर !! इति

टिप्पणी—१. पातः राहुः २ चौरशब्दमुच्चार्य्येत्यर्थः । कर्मण्याक्रोशे कृञः खमुञ् इति खमुञ् । आक्रोशस्य गम्यमानत्वात् बन्धनक्रियापेक्षया पूर्वकालिकत्वम् । ३. अधिकरणे बन्ध इति णमुल् कषादिषु यथा विध्यनुप्रयोगश्च ।

शब्दङ्कृत्वा राहोः हस्तौ पृष्ठप्रदेशे कृत्वा विपरीत बन्धम् "पिठिया बान्ह" इति भाषायाम् । तच्च कठोरदण्डस्य सूचकम् ! वधान

सादृश्याद्वस्त्व तरप्रतीतिर्भ्रान्तिमानिति रुय्यकोक्तेरत्र भ्रान्तिमानलङ्कारः। काव्यादर्शोक्तेः मोहोपमा ।

हिन्दी—हे बाले ! तुम्हारे मुख को निष्कलङ्क एवं पूर्णचन्द्र समझ कर उसे ग्रसित करने के लिए केश पाश के बहाने राहु टपक पड़ा। अतः हे बडहर के समान स्तनवाली ! अब तुम भी हाथ से राहु को उपर उठा कर चोर ! चोर ! कहते हुए इस केश पाश को पीठ की तरफ (पिठिया बान्ह) वान्ध डालो। (मुख पर विखरे हुए वालों को सँभालो)

चक्षुर्लीलाङ्कमलमतुलां भिक्षते तेत्युदारे !
वाचं मोचामधुररुचिराङ्कोकिलः कूजितेन ।
बन्धूकश्चाप्थधर सुषमांनम्भावेन कम्रे !
मुख्याभिख्या[1] तव नवनवा वर्धतेऽथापिकापि ।।१७।।

चक्षुर्लीला मिति। हे अत्युदारे ! उदारहृदये ! कमलं ते तव अतुला मनुपमां चक्षुर्लीलाम् नेत्रयोः विलासं भिक्षते याचते। तथा च कोकिलः पिकः स्वरमाधुर्यकवि सम्प्रदाय प्रसिद्धः कूजितेन स्वरवेण मोचामधुररुचिराम् मोचा रम्भाफलम् तदिवमधुराम् रुचिरां वाचम् वाणीं भिक्षते। यक्षिण्याः वाचि माधुर्यातिरेकत्वात् । हे कम्रे ! कामवति ! बन्धूकश्च बन्धुजीवकश्च 'मधुरी' इति मैथिली भाषायाम् नम्रभावेण विनयेन ते अधर सुषमां अधरस्य परमां शोभां भिक्षते। तें तव यक्षिण्याः नवनवा नवीनतरा प्रतिक्षणम् परिवर्तनशीला कमलादिभ्यः चक्षुर्लीलादीनाम् प्रदानात् । एतच्च उदारहृदये ! इति साभिप्रायसम्बोधन प्रयोगात् गम्यते। अतएव नवीभूता कापि काचिदपि मुख्याभिख्या मुखे भवा अभिख्या शोभा यद्वा यशः "अभिख्यात्वभिधानेस्यात् शोभायाञ्च यशस्यपि" इति मेदिनी अथापि एवम्प्रकारेणाऽपि वर्धते वृद्धिम्प्राप्नोति।

भिक्षते इति क्रियादीपकः ! अत्युदारे इत्यत्र परिकरालकारः। व्यतिरेकालङ्कारः।

हिन्दी—हे उदार हृदयवाली ! कमल तुम्हारे आँखों की अतुलनीय लीला की भीख माँग रहा है। कोयल अपनी कूक से केला के समान मधुर

---

१. शोभा

एवं मनमोहक तुम्हारी वाणी की (**भीख मांग रहा है**)। हे कामुकि ! दुपहरिया फूल भी झुक-झुक कर तुम्हारे **होठों** की शोभा की (भीख मांग रहा है) तुम्हारे मुख की नई नई शोभा अथवा यश (कमल कोकिल एवं दुपरिया फूल को दान देने के कारण) इस प्रकार भी बढ़ रही है।

श्रेयःस्पर्शे स्थलजकमलाऽसौरभाकृष्टभृङ्गं
रूप्यावाले विलसितमिदं स्वर्णकाण्डाधिरूढम्।
रूढम्मन्ये कमलममलन्त्वन्मुखं यौगिकन्तु
ख्यातं लोके यदिह जलजन्तज्जलानाम्मलन्त्वात्[1] ॥१८॥

श्रयःस्पर्शे इति। हे प्रिये ! रूप्यावाले ! रूप्यः प्रशस्तश्चासौ आवालः आलवालः वृक्षमूले कृतजलाधारः तस्मिन् "रूप्यःस्यात् सुन्दरे त्रिषु" इति मेदिनी-हेमचन्द्रौ। रूप इति धातोः रूपादाहत प्रशंसयोर्यप्" इति यपि। "स्यादालवालमावालमावापाः" इत्यमरः। स्कन्धप्रदेशे आवालस्यारोपः। तत्र विलसितम् शोभितमिदम् स्पर्शश्रेय प्रशस्तम् कोमलत्वात्। स्थलज कमलासौरभाकृष्टभृङ्गम् स्थले जातम् स्थलजम् तत्कमलम् तस्य आसौरभात् व्याप्तसुगन्धेः आकृष्टः भृङ्गः भ्रमरः यत्र तन्मुखम्। चिकुर निकरे भृङ्गस्यारोपः अथ च स्वर्णकाण्डाधिरूढम् स्वर्णस्य काण्डम् शाखा इति तस्मिन् अधिरूढम् आरूढम्। गलप्रदेशे स्वर्णकाण्डस्यारोप;। त्वन्मुखम् तवाननम् तु यौगिकम् योगाय प्रभवति इति आवाल भृङ्ग काण्डादीनाम् योगात् मुखस्य स्थलजकमलत्वम् निष्पन्नम्। कमलन्तु अमलमिति मलरहितम् इति रूढम् अयौगिकम् मन्ये। यत् इहलोके जलजम् जले जातं कमल तत् जलानाम् मलत्वात् कमलम् इति ख्यातम् प्रसिद्धम्। कस्यमलं कमलमिति व्युत्पत्ति पक्षे अत्र चमत्कारः। व्यतिरेकालङ्कारः।

हिन्दी—हे प्रिये ! सुन्दर स्कन्ध रूपी क्यारी में उत्पन्न, स्वर्णमय शाखा के (समान गल प्रदेश के) ऊपर स्थित छूने में कोमल तथा थल कमल की सुगन्धि से आकृष्ट भ्रमर समूह (घुँघराले बाल) से युक्त तुम्हारा मुख तो इन सबों की उपस्थिति के कारण यौगिक रूप से कोमल है। क्योंकि जल में उत्पन्न कमल तो रूढ़ रूप में मल रहित होता है। क्योंकि जल में उत्पन्न कमल तो जल का मल होने के कारण (कस्य जलस्य मलम् 'जल का मल' इस व्युत्पत्ति के कारण 'कमल'—ऐसा लोक में प्रसिद्ध है।

---

१. कस्य जलस्यमलं कमलमिति व्युत्पत्तेः।

शङ्के साङ्को विधुरपि निशि व्रीडितस्त्वन्मुखाग्रे,
स्रस्तः पद्मं किमपि च हृदाऽऽचिन्त्य सङ्कोचमाञ्चत् ।
स्वक्षि[1]च्छायोभय सुमिलिता निष्पतन्ती तवास्ये
हास्योल्लास्ये कनक कदली कुक्षिकान्ति व्यनक्ति ॥१६॥

शङ्के साङ्क इति । हे स्वक्षि ! सुनयने ! साङ्को विधुः अङ्केन लाञ्छनेन सहितः विधुः चन्द्रः अपि निशि रात्रौ त्वन्मुखाग्रे तव यक्षिण्याः मुखम्पुरतः व्रीडितः लज्जितः सन् स्रस्तः च्युतः अस्तं जिगमिषुः अस्ति इति शङ्के । पद्मञ्च रक्तकमलञ्च किमपि किञ्चिदपि 'यक्षिण्याः मुखाग्रे मम शोभा तिरस्कृता अतः व्यर्थ मे अवमानितम् जीवनम्' इत्यादिभिः स्वगौरव हानि विषयकम् हृदा हृदयेन मनसि इति भावः । आचिन्त्य सर्वतोभावेन ननु न च इति विवेकेन चिन्तनं कृत्वा सङ्कोच माकृतौ अपक्षयम् आञ्चत् प्राप्तवान् । अञ्चु गतौ । हास्योल्लास्ये हास्यम् उपहास योग्यम् च उल्लास्यं नृत्यञ्चेति उभय सुमिलिता उभाभ्याम् समुदिता । चन्द्रस्य व्रीडन मुपहसनीयम् किञ्च पद्मस्य सङ्कोचः गात्रविक्षेपरूपः । एव मुभाभ्याम् समुदिता छाया प्रतिबिम्ब तवास्ये तव यक्षिण्याः मुखे निष्पतन्ती सती कनक कदली कुक्षिकान्तिम् कनकमयी कदली अजिन जातीया मृगी "रम्भा वृक्षेषु कदली पताका मृगभेदयोः" इति मेदिनी । तस्याः कुक्षेः जठरस्य कान्ति शोभां व्यक्ति आत्मनः शोभामुपसर्जनीकृत्य विशिष्टां शोभाम् प्रकाशयति इति । कनक हरिण्याः जठर-प्रदेशे नृत्यरूपम् चाञ्चल्यम् भवतीति सहृदयहृदयसंवेधः ।

अप्रस्तुत प्रशंसालङ्कारः । उत्प्रेक्षा च ।

हिन्दी—हे सुन्दर आंखों वाली ! कलङ्क सहित चन्द्रमा भी रात में तुम्हारे मुख के सामने लज्जित होता हुआ गिर रहा है । कमल भी मन में कुछ सोचकर (अपनी शोभा फीकी पड़ने के कारण) मुरझा गया है । हास्य और नृत्य की यह छाया तुम्हारे मुख पर पड़ती सी स्वर्ण मयी हिरणी के उदर भाग की शोभा को व्यक्त कर रही है ।

त्वद्वक्त्रेन्दुं सततमुदितं वीक्ष्य कान्तेति कान्तं-
मान्ये म्लाना प्रति दिन मसा वूर्ज राजीव राजी ।

1. शोभने अक्षिणी यस्याः तत्सम्बोधनम् । बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोरिति षच्च न पूजर्गादिति निषेधस्तु ततः प्रागेवेति बोध्यम् ।

सन्तप्तान्तः शरणमपरन्नेक्षमाणाऽक्षमा सा
हेमन्तेऽल्पातपवति हिमेनापि संशोषमाप्ता ॥२०॥

त्वद्वक्त्रेन्दुमिति। हे कान्ते ! प्रिये ! असौ पुरोदृश्यमानाऊर्जराजीवराजी ऊर्जः कार्तिकः "ऊर्जः कार्तिकेबले' इति हैमः। ऊर्जस्थं राजीवं कार्तितमासीय कमलम् तस्य राजी पङ्क्तिः त्वद्वक्त्रेन्दुम् तव यक्षिण्या; मुखचन्द्रमति कान्तम् अति सुन्दरम् सतत मुदितं न कदाचिदपि अस्तमितं वीक्ष्य दृष्ट्वा प्रतिदिन म्लाना म्रियामाणा मन्ये। अतएवापरं द्वितीय सन्तप्तान्तःशरणम् सन्तप्तः अन्त, मनोयेषाम् तेषाम् शरणामाश्रयम् न इक्षमाणा दृश्यमाना अतएव अक्षमा जीवनधारणे अशक्ता सा शारद्यकमलपङ्क्तिः अल्पातपवति अल्पः क्षीणः अल्पकालिको वा दिनमानस्याल्पत्वात् आतपः सूर्य प्रकाशः अस्त्यस्मिन् इति अल्पातपवत् तस्मिन्। हेमन्ततौं हिमेनापि तुषारेणापि सशोषमाप्ता शोषणम्प्राप्ता। शोषणन्तु अग्निना आतपेन वा भवति परमृतद्विपरीतेन शीतलेन हिमेनापि कमलानां शोषणमत्रोक्तम्।

"विरुद्धात्कार्यसम्पत्तिर्दृष्टा काचिद्विभावना इति अप्पयदीक्षितोक्तेः विभानाऽलङ्कारः; । म्लानामन्ये इत्यत्रोत्प्रेक्षा !

हिन्दी—कार्तिक मास में उत्पन्न यह कमल की पङ्क्ति तुम्हारे मुखरूपी चन्द्रमा को हमेशा उगा हुआ देखकर दिनोंदिन मलिन हो रही है। जलते हृदय वालों का दूसरा आश्रय न पाकर (जीवनधारण में) असमर्थ होती हुई वह कम धूप वाले हेमन्त ऋतु में बर्फ का शरण लेने पर भी अथवा बर्फ में भी सूख गई है।

पीत्वा पीत्वा तव मुखविधोः सद्रसाढयाम् सुधान्तां
वक्रीभूय श्रवणविवरे लम्बमानोभयास्या।
कृष्णव्याली तरुणि ! विशती[1] भ्रूच्छलेनाधुनाते
पश्याश्चर्यं समबलतया वक्त्रयोव्र्यर्थंला ॥२१॥

अथ यक्षिण्याः भ्रूः प्रदेशं वर्णयति-पीत्वा पीत्वेति। हे तरुणि ! तव मुखविधोः मुखचन्द्रस्य सद्रसाढयाम् सत् प्रशस्तः विद्यमानो वा रसः आस्वाद्यः सद्रसः तेन आढयां धनिनम् 'इभ्य आढ्योधनी''–इत्यमरः। यक्षिण्याः मुखपक्षे शृङ्गाररसः चन्द्र यक्षे रसनाग्राह्यः रसः। ताम् चन्द्रे निहिताम्

[टिप्पणी नास्ति]

टिप्पणी—१. आच्छीनंद्योर्नम् इति नुम् विकल्पे।

सुधाममृतम् पीत्वा पीत्वा । वीप्सायाम् द्वित्वम् । उभयास्या उभयमास्यम् मुखम् यस्याः द्विमुखी इति । कृष्णव्याली श्यामवर्णी सर्पिणी । मिथिलायामियम् "अधसर" इति नाम्ना प्रसिद्धास्ति । कथ्यते यत् एकतः अस्य मुखम् नागस्य 'गेहुंअन' इति ख्यातस्य भवति अपरतः निर्विषस्य 'घामिन इति ख्यातस्य । विद्यापतिना गीतेपु भृशम् वर्णिता । इयं सर्पिणी अधुना सम्प्रतिते तव भ्रूच्छलेन नेत्रोपरिभागस्थरोमराजिव्याजेन वक्रीभूय सर्पिलाकृतिकृत्वा । अनेन भ्रूः प्रदेशस्य वक्रता व्यज्यते । श्रवण विवरे कर्णयोः छिद्रयोः लम्बमाना विशती स्थिता । विश् धातोः शतृप्रत्यये स्त्रियाम् । परम् आश्चर्यंपश्यत् सववत्रयोः मुखयोः समबलतया कर्णबिवरयोः गन्तुम् उभयतः समानशक्ति प्रयोगात् व्यर्थंयत्ना व्यर्थः यत्नः प्रयासः यस्याः तथाभूता तिष्ठतीति शेषः । विपरीतयोः दिशोः समान बलप्रयोगात् कर्ण विवरेगन्तुम् न शक्नोति इति भावः।

साङ्गरूपकालङ्कारः ।

हिन्दी—हे तरुणी तुम्हारे मुखचन्द्र का अमृत–जो सुन्दर रसों का घनी है उसे पी पी कर दुमुंही काली सर्पिणी तुम्हारे भौंह के बहाने इस समय टेढ़ी होकर दोनों कानों के विवर तक खिंची हुई बैठी है । किन्तु अचरज की बात देखो कि वह दोनों मुखों से (विपरीत दिशा में) समान बल लगाने-वाली अपने प्रयास (कर्ण बिवर में जाने के लिए) में व्यथ हो रही है ।

प्रोत्तुङ्गन्ते स्तनयुगमिदं सन्निभा[1]ल्य स्वकुम्भे-
ऽवज्ञामृद्योऽभ्रमुरमणकोऽ बम्भ्रमीत् सम्भ्रमेण ।
सैका माशां[4] नियमित मति र्जन्तु कामोऽधुनातत्[5]
सं श्रित्यास्ते तपसि दयिते ! किंश्रमैःस्यात्तिरश्चाम्[6] ॥२२॥

अथ यक्षिण्याः स्तन युगं वर्णयति-प्रोतुङ्गन्ते इति । अभ्रमुरम्मणकः अभ्रमुः ऐरावतपत्नी करिणी" करिण्यो-भ्रमुकपिलेत्यमरः । तस्याः रमणकः रम्यतेऽसौ स एव रमणकः कामिपुरुषः ऐरावत इति ते तव यक्षिण्याः प्रोतुङ्गम् प्रकृष्टमुत्तुङ्गम् उन्नतम् इदम् पुरो दृश्यमानम् स्तनयुगम् सन्निभाल्य दृष्टवा स्व कुम्भे स्वमूर्द्धिन अवज्ञामृद्यः अवज्ञया अनादरेण स्व कुम्भ निर्माणे ब्रह्मणा

टिप्पणी—1. दृष्टवा । 2. ऐराबतः । 3. सः एकामिति स्थिते सोऽचिलोपे चेदिति सुलोपः । 4. एकामाशां प्राचीं दिश प्रत्याशां बा । 7. स्तन युगम् । 6. षष्ठं जैमिनिना तिर्यगधिकरण-सिद्धान्त बलेन तिरश्चां कर्मानधिकारप्रतिपादनात् तेषां श्रमाः खेद रूपाः न तपोरूपाः । श्रमु तपसि खेदे चेति धात्व र्थानुसाराच्च ।

कृतेन तिरस्कारेण मूद्य: चूर्णित: "अद्वितीयो मे मूर्द्धा इति अहङ्कारस्य नाशात्। सम्भ्रमेण आवेगात् त्वरया अबम्भ्रमीत् पुन: पुन: अतिशयेन वा भ्रमणमकरोत्। स अन हतज्ञ: ऐरावत: नियमित मति: निश्चित-बुद्धि: कृत सङ्कल्प; जेतु काम: विजयेच्छुक: अद्वितीयत्व लाभार्थम् अधुना एकामाशां प्राचीं दिशं स्व स्वामिन: इन्द्रस्य दिशम्प्रत्याशां वा तत् सश्रित्य आश्रित्य तपसि आस्ते तप: कुरुते परम् हे दयिते। प्रिये, तिरश्चांतिर्यग्योनिगतानाम् पशुपक्षिणामित्यथ:। तेषाम् श्रमै: तपोभि: खेदै; वा किं स्यात्। किमपि न स्यादिति। जैमिनिनाऽपि मीमांसा सूत्रे षष्ठाध्याये अधिकारिनिरूपणप्रसङ्गे तिरश्चाम् पशुपक्षिणाम् तपसि अनधिकारित्वम् निरूपितम्। तेषां तप: खेद रूप:। तथा च पाणिनी ये ऽपि श्रमु धातु: तपसि खेदे चोक्त; अनेनाप्यत्र ऐरावतस्य खेदै: किमपि न भवितुमर्हति इति बोध;। ऐरावतस्य कुम्भादपि सुन्दरम् यक्षिण्या: स्तनयुग्मिति भाव:।

हिन्दी—कामुक ऐरावत तुम्हारे इन दोनों ऊपर उठे हुए स्तनों को अपने मस्तक से उत्कृष्ट देखकर (अपने मस्तक के निर्माण में की गई) अवहेलना को समझकर आवेग से बार बार घूमने लगा। वही सङ्कल्प कर इस समय अपने मस्तक की अद्वितीयता प्राप्त करने के लिए पूर्व दिशा में तपस्या कर रहा है। पूर्व दिशा के स्वामी इन्द्र हैं जो ऐरावत के भी स्वामी है, शायद वे मदद करें इस आशा से वह पूर्व दिशा की ओर ताक रहा है।) अथवा आशा कर रहा है। किन्तु प्रिये ! पशु-पक्षियों द्वारा श्रम करने से भला क्या होगा !! (अर्थात् ऐरावत को अपने मस्तक की अद्वितीयता प्राप्त नहीं होगी क्योंकि उन्हें तप में अधिकार ही नहीं है। इसी लिए पाणिनि ने भी श्रम धातु का तप और खेद दो अर्थ किया है—तप मनुष्य के लिए और खेद-पशु पक्षियों के लिए)।

बाले ! भाले रुचिर रुचिर: सूक्ष्म सिन्दूर विन्दु:,
कर्णे पुष्पं, दशन-वसने गाढताम्बूलराग:।
सौवीरन्ते दृशिनखततौ यावकश्चित्रवासो
गौरे गात्रे गुणिनि ! सुभगम्भावुकत्वं गृणन्ति ॥२३॥

बाले ! भाले रुचिररुचिर: इति। हे बाले ! तव भाले ललाटे रुचिर रुचिर: रुचिरेष्वपि रुचिर: अति सुन्दर: सूक्ष्म सिन्दूर विन्दु: सूक्ष्मश्चासौ

टिप्पणी नास्ति।

सिन्दूर विन्दुः, अनेन यत्नात् विशेषकरचना व्यज्यते। तथा च तेन व्यङ्ग्यार्थेन पतिम्प्रति रतिः व्यज्यते कर्णश्रवसि पुष्पम् कर्णयोरिति। दशनवसने दशनानि दन्ताः वस्यते आच्छाद्यते अनेनेति वस् आच्छादने इति धातोः ल्युटि तस्मिन् अधरोष्ठयोः समुदाये गाढताम्बूलरागः गाढः गहनश्चासौ ताम्बूल रागः। ते दृशि तव नेत्रयोः सौवीरम् स्रोतोऽञ्जनम्। यद्यपि अमरकोषे स्रोतोऽञ्जन सोवीरयो रभेदत्वमुक्तम् "स्रोतोऽञ्जनन्तु सौवीरम्" इति। परम् वर्णभेदादुभयोः पार्थक्यं प्रमाणयन्तिवैद्याः। स्रोतोऽञ्जनम् कृष्णवर्णम् सौवीरन्तु किञ्चित् पीताभम् भवति इति भावप्रकाशे परिशिष्टे निघण्टुभागे ब्रह्मशङ्कर शर्मा। महाराष्ट्रे अथवा गुजराते तु रक्तवर्ण मञ्जनम् सौवीरमिति। तत्र लाल सुरमा 'पाढरा सुरमा' इति अस्य नाम) तथा च नखततौ नखविस्तारे यावकः याव एव यावकः स्वार्थेक प्रत्ययः अलक्तक इति! राक्षालाक्षा जतुक्लीबे यावोऽलक्तद्रुमामयः" इत्यमरः। तथा च हे गुणिनि ! प्रशस्तगुणमयि ! तव गौरेशुभ्रे गात्रे शरीरे चित्रवासः चित्रित वस्त्रम् च सुभगम् प्रशस्तमैश्वर्यम् भावुकत्वम्–भावुकं कल्याणं तस्य भावम् गृणन्ति कीर्तयन्ति। गृ शब्दे तुदादिगणीयः। तस्मादेते तव ऐश्वर्यम् प्रशंसन्ति इति भावः।

हिन्दी—हे बाले ! गुणवति ! तुम्हारे मस्तक पर स्थित सुन्दर एवं छोटा सा सिन्दूर बिन्दु, दोनों कानों में फूल, होठों पर पान की गहरी लाली आंखों का अञ्जन नखों पर अलक्तक राग तथा गोरे बदन पर चित्रित वस्त्र ये सब तुम्हारे ऐश्वर्य मय कल्याण की प्रशंसा करते हैं।

यस्मिन्काले सुमुखि ! समभूत्सङ्गमोदुर्लभस्ते
तस्मिन्दौत्ये नव जलधरो भ्राम्यता योनियुक्तः।
सोऽप्यद्यत्वेऽशिथिलित भुजाश्लेष सौख्याशिनौ नौ
दृष्ट्वा स्मित्वा धवलवदन व्याजतो हृष्यतीव ॥२४॥

यस्मिन्काल इति। हे सुमुखि ! सुन्दर वदने ! यस्मिन्काले भ्राम्यता भ्रममाणेन मेघेन सह ते तव यक्षिण्याः दुर्लभः कष्टेन प्राप्यः सङ्गमः सम्मेलनम् समभूत्। यक्षेण प्रेषितस्य मेघस्य अलकां सम्प्राप्तस्य यक्षिण्या सह सम्मेलन मत्र सङ्केतितम्। रामगिरि प्रदेशाद्दूरादागत्य कथङ्कथञ्चित् यक्षिण्याः दर्शनात् सङ्गमस्य दुर्लभत्वम्। अत्र भ्राम्यता इति विशेषण पद प्रयोगात् विशेष्यस्य मेघस्य प्रतिपत्तिः। यथा चोक्तम् वामनेनविशेषणमात्रप्रयोगो विशेष्य प्रतिपत्तौ" इति। तस्मिन् दौत्ये दूत कर्मणि योनियुक्तः मानवरूपधारी निर्जीवस्य मेघस्य मानवीकरणम् यथा मेघदूते–"जातंवंशे भुवन विदिते पुष्क-

रावर्तकानाम्'' इति। एवम्भूत: नव जलधर: नवीनमेघ:। आषाढस्यप्रथम दिवसे एव दर्शनात् मेघस्य नवीनत्वम्। स मेघ: अपि अद्यत्वे अस्मिन् संयोगावसरे अशिथिलिता: प्रगाढाश्चामी भुजा: तै: कृत: आश्लेष: आलिङ्गनम् स एव सौख्य: तस्य: अशिनौ भोजिनौ भोगिनौ इत्यर्थ: नौ दृष्टवा स्मित्वा ईषत् हसित्वा धवलवदनव्याजतो श्वेतगात्रच्छलेन शरदि मेघस्य शुक्लत्वात् हृष्यति इव तुष्टि प्राप्नोतीव।

उत्प्रेक्षाऽलङ्कार:।

हिन्दी—हे सुन्दर मुख वाली! जिस समय घूमते हुए मेघ के साथ कठिनता से होने वाली तुम्हारी भेंट हुई थी उस दूत कार्य में शरीर धारी जो नवीन मेघ था वह आज गाढ़ आलिङ्गन के सुख को भोगने वाले हम दोनों को देखकर मुसकुरा कर सफेद बदन के बहाने मानों सन्तुष्ट हो रहा है।

कम्रःश्चन्द्रः सिचयनिचयं चाञ्चरीकं करैः स्वैः
पश्योत्सार्याभवदतितराम्प्रार्थकोऽप्याप्रदोषात्।
नैवाद्राक्षीदथदलदृशी मुद्रयत्पद्मराजी
हाऽन्धीभावं भजति हि जने गर्वतो गौरनारी॥२५॥

कामुको यक्ष: सुरते यक्षिण्या: उदासीनतामभिलक्ष्य प्रकृताबपि मानवत्या: पद्मपङ्क्ते चन्द्रम्प्रति उदासीनतां वर्णयन् कथयति-कम्रश्चन्द्र इति। प्रिये! पश्य कम्र: कामुक: चन्द्र: चाञ्चरीकम् चञ्चला प्रकृति: यस्यासौ चाञ्चलीक: रलयोरभेदात् चाञ्चरीक:। तम् मेघमिति यद्वाचञ्चरीको भ्रमर: तन्मयम् चाञ्चरीकम्। दिवसे भ्रमरा: कमलिनीमावृत्य तिष्ठन्त्यत एव तेषाम् वस्त्र त्वम्। रात्रौ तेषामभावात् वस्त विसर्जन कल्पनम् एवम्भूत सिचयनिचयम् सिचय: वस्त्रं "पटऽस्त्री कर्पट: शाट: सिचयप्रोतलक्तका:' इति रभस: तेष;म् निचय: समूह: तम् वस्त्र समूहम् स्वै: करै: निजकिरणहस्तै: उत्सार्य ऊर्ध्वं कृत्वा विसृज्य अतितरामतिशयेन आप्रदोषात् "प्रदोषो रजनी मुखम्" तस्मात् कालात् प्रार्थक: याचक: अपि अभवत्। परम् मुद्रयती नेत्रमुन्मीलयती पद्म-राजी कमल पङ्क्ति: दलदृशी दलानि एव दृश: यस्या: सा दलाक्षी नैव अद्रा-क्षीत् नैवापश्यत्। हा हन्त! जने लोके गौर नारी शुभ्रवर्णा महिला गर्वत: आत्मन: गौरत्वगौरवादहङ्कारात् अन्धीभावम् नेत्र हीनताम्—पश्यन्ती अपि प्रियं न पश्यति इति भावम् भजति प्राप्नोति।

टिप्पणी नास्ति।

परोक्ति भेदकैः श्लिष्टैः समासोक्तिरिति मम्मटोक्तेः समासोक्तिरलङ्कारः अर्थान्तरन्यासश्च ।

हिन्दी—प्रिये ! देखो, कामी चन्द्रमा चञ्चल मेघ रूपी वस्त्र उठाकर-हटाकर सायङ्काल से ही अत्यधिक विनती कर रहा है । पखुड़ी रूपी आँखों वाली कमलपङ्क्ति आँखें खोलती हुई चन्द्रमा की ओर देखती नहीं (वह खिल नही रही है) । अरे ! लोक मे गोरी गौरव से अन्धी हो जाती है ।

एवङ्कृत्वा बहुविधमनङ्गोद्भवं सा धवेन
प्रेम्णापूर्णा परमनिपुणा पौरनारी-कथाभिः
अन्यान्यैर्वा क्रमविरहितैर्भाषिणैर्भूषिताङ्गी
तन्द्राम्प्राप्यत्वरितमगमत्स्वं निशान्तं[1] निशान्ते[2] ॥२६॥

सौधाग्रेद्धाशकलितेत्यादिना काव्यस्यास्य नवमश्लोकेन यक्षयो सम्भोग स्थानम् कविना सङ्केतितम् । तत्र सौधाग्रे विविध प्रकारेण विलास विधाय रजन्याः अवसाने गृहाभ्यन्तरम् गच्छति यक्षः । तद्वर्णयति एवङ्कृत्वा इति । एवमनेन प्रकारेण सा यक्षिणी प्रेम्णापूर्णा प्रेमभरिता परमनिपुणा ललित-कलासु प्रवीणा भूषिताङ्गी भूषितानि मण्डितानि कटककुण्डलादिभिराभूषणैः युक्तानि अङ्गानि यस्याः सा यक्षिणी पौरनारी कथाभिः पुरनारीणाम् काल्प-निकैः क्रमयुक्तैः प्रकथनैः । अत्र कथेतिपदम् शास्त्रीयम् । कथायाम् काल्प-निकत्वम्-आख्यायिकायाः व्यावर्तकत्वात् आवश्यकम् । तथा च घटनासु पौर्वापय विवेकोऽपि आवश्यकः । अन्यान्यैः अपरैः कथाभिन्नैः क्रम विरहितैः पौर्वापर्यविवेकरहितैः भाषणैः वचनैर्वा । एतच्चा वर्णितमुत्तररामचरितेऽपि-"किमपि किमपि मन्दमन्दमासत्तियोगादविरलितकपोलेःजल्पतोरक्रमेणेति एवमुक्तैः प्रकारैः साधवेन पत्या बहुकाल सम्प्राप्तेन यक्षेण सह बहुविधमनङ्गोद्भवम् अनेक प्रकारकं कामोत्सवम् कृत्वा । "अथ क्षण उद्धर्षो महउद्धव उत्सवः" इत्यमरः । अथवा उद्भव इति साभिप्रायः उद्धुनोति दुःखम् इति उद्धवः । धुञ् कम्पने इति धातोरच् प्रत्ययान्तम् पदम् । प्रसङ्गे यक्षयोः सङ्गमः शापावधिकविरहजनितदुःखापनोदनस्वरूपः न तूत्सव-स्वरूपः इति विवेक; । ततः पश्चात् तन्द्राम्प्राप्य निशान्ते रजन्याः अवसाने त्वरित शीघ्रम् स्वं निशान्तं स्वगृहम् "निशान्तः वस्त्य सदनम् भवनागार मन्दिरमिति अमरः । अगमत् अगच्छत् ।

टिप्पणी—१: गृहम् । २. रात्रिशेषे ।

निशान्तं निशान्ते इत्यंशे यमकालङ्कारः ।

हिन्दी—इस तरह प्रेम से भरी हुई ललित कला कलाओं में निपुणा एवं आभूषणों से सजी हुई यक्षिणी नगर के विलासिनी सखियों की कथाओं से, क्रमरहित वार्तालापों से तथा अन्यान्य प्रकार से पति यक्ष के साथ विभिन्न प्रकार से कामोत्सव मनाकर तन्द्रा आने पर रात्रि के अवसान में शीघ्र ही अपने घर के भीतर चली गई ।

अङ्गाद्धीना वररमयितुः शापकालाच्च दीना
कीनाशाशां[1] जिगमिषुरिवातीवखिन्ना नवीना
मीनाक्षी या क्षणमिव शिलाःस्रावयन्ती सतीना
सा दिष्टयाद्य स्वपितिललना कान्तदेहेतिलीना ॥२७॥

अङ्गाद्धीनेति। वररमयितुः श्रेष्ठरमणयोग्यात् अङ्गात् शरीरावयवात् हीना । अनेन शापात् पूर्वम् यक्षिण्याः शोभनमङ्गम् व्यज्यते । शापकालात् शापस्यारम्भकालात् दीना भीता "दीनास्त्री मूषिक स्त्रियाम् वाच्य वद् दुर्गते भीते' इति मेदिनी। पत्युः वियोगात् भीता' इति तात्पर्यम् । कीनाशाशाम् कीनाशोयमः तस्य आशा दिक् तम्प्रति जिगमिषु रिव गन्तुमुद्यतेव मुमूर्षुरिवेत्यर्थः खिन्ना दुःखिता। नवीना नववयोयुक्ता बाला सतीना सतीषु सच्चरित्रासु पतिव्रतासु इना स्वामिनी एव म्भूता या यक्षिणी शिलाः प्रस्तरखण्डान् अपि क्षणमिव परतन्त्रमिव "क्षणः काल विशेषस्यात्पर्वण्यवसरे महे"। "व्यापार विकलत्वे च परतन्त्रत्व मध्ययोः" इति हैमः। स्रावयन्ती-स्यन्दयन्ती। अनेन विरहे यक्षिण्याः क्रन्दनम् द्योत्यते। मीनाक्षी इव अक्षिणी यस्याः। अनेन नयनयोः चाञ्चल्यमल्पत्वञ्च व्यज्येते। विरहादक्षिकनीनिकयोरल्पत्वम्। ताभ्यामल्पाभ्याम् नयनाभ्याम् जायमानेनाश्रुपातेन प्रस्तराणामपि प्रस्रवणमत्र संवेद्यम्। सा एवम्भूता हीना, दीना मुमूर्षुः रुदन्ती च यक्षिणी ललनां कामिनी अद्य दिष्टया आनन्देन दिष्टया इत्यव्ययम्। अद्य कान्त देहे यक्ष शरीरे अतिलीना लीन तामतिक्रम्य स्थिता प्रश्लिष्टा स्वपिति निद्राम्प्राप्नोति। पर्यायालङ्कारः। परिकरालङ्कारश्च मीनाक्षी इति पदस्य साभिप्रायत्वात् ।

हिन्दी—(शापकाल में) श्रेष्ठ रमणी के योग्य अङ्गों से रहित शापकाल के आरम्भ से ही सहमी हुई, यमराज की दिशा में जाने को उद्यत, (मुमूर्षु—At the critical stage of death) अत्यधिक दुःखी नई नवेली, सती श्रेष्ठ

टिप्पणी—१. यम दिशम्

एवं मछली के समान आँखों वाली जो बेबससी (अपने क्रन्दन से) पत्थरों को भी पिघलाती थी (रुलाती थी) आज (संयोग होने पर) आनन्द से प्रिय के शरीर में सटी हुई सो रही है।

या वा कृष्णाम्बरवृततनूरामुखात् सर्वकृष्णा
दुःखन्त्यासीन्नवविरहिणीं प्रावृषेण्या त्रियामा
पत्याश्लिष्टाम्मदयतितरां स्मेरवक्त्राम्बरेद्धा
सैवाद्यत्वे भवति हि सुहृत्सद्विधौ सर्व एव ॥२८॥

अथ रात्रेरपि सम्प्रति उद्धीपनत्वम् वर्णयति या वा कृष्णाम्बरवृततनूरिति ,। वा अथवा या कृष्णाम्बरवृततनूः कृष्णेन अम्बरेण वस्त्रेण आकाशेन वा वृता तनूः शरीरम् यस्याः किञ्चामुखात् प्रदोष कालात् आननाद्वा सर्व कृष्णा सर्वाणि अङ्गनि कृष्णानि कृष्णवर्णानि यस्याः एवम् भूता प्रावृषेण्या वर्षाकालिकी पाषमयी त्रियामा रात्रिः नवविरहिणीम् नवीनां वियोगिनीम् दुःखन्ती पीडयन्ती आसीत् सैषा रात्रिः अम्बरे सुगन्धितवातावरणे" अम्बरे न द्वयो र्व्योम्नि सुगन्ध्यन्तरवस्त्रयोः इति अमरः तस्मिन् स्मेर वक्त्रा स्मित मुखी सती अद्यत्वे अद्य प्रभृति पत्याश्लिष्टाम् पत्या यक्षेण आश्लिष्टाम् आलिङ्गिताम् मदयतितराम् अतिशयेन हर्षयति। सत्यञ्च- सद्विधौ सद्भाग्ये सति सव एव सुहृद्भवति मित्रम् भवति।

पर्यायालङ्कारः अर्थान्तर न्यासः अत्र रात्रे मानवीकरणम्।

हिन्दी—अथवा, काले वस्त्रों से ढ़ँकी हुई (रात्रि पक्ष में—कृष्ण वर्ण आकाश से घिरी हुई) मुख से (पैर तक) काले अङ्गों वाली (सायङ्काल से ही काली) वर्षा की जो मानव देह धारिणी पापमयी रात नव विरहिणी यक्षिणी को (शाप काल में) कष्ट देती थी, आज से सुगन्धित वातावरण में मुसकुराती हुई अत्यधिक आनन्दित करती है। (ठीक ही है कि) भाग्य सुन्दर होने पर सभी मित्र हो जाते हैं।

याते चन्द्रे चरममचलम्भास्करे चापि पूर्वं
मुद्राक्रान्ते कुवलयकुले चारविन्देऽसुविन्दे
नीडोड्डीने शकुनि निकरे वाश्यमाने तु गीतै-
र्गान्धारज्ञारुचिररचनै र्वन्दिनोऽबू बुन्धं स्तौ ॥२९॥

[टिप्पणी नास्ति]
[टिप्पणी नास्ति]

अथ प्रात:काले सम्प्राप्ते तयो: प्रबोधनम् वर्णयति याते चन्द्र इति । चन्द्रे रजन्यामुदिते पूर्णे चन्द्रमसि चरममचलम् चरममन्ति माचलम्पर्वतम् अस्ताचल मित्यर्थः याते सति किञ्च भास्करे द्यु तिकारके सूर्ये पूर्वं पूर्वस्यान्दिशि याते उदिते सति इत्यर्थः । तथा च कुवलय कुले कुमुदिनि समूहे नीलोत्पलकुले । कुवलयन्तु चन्द्रविकासिपुष्पम् । यथो क्तम्—"इन्दोरस्य च मण्डले कुव-लयालङ्कारि ध्रुवम्" इति । तस्मिन् मुद्राकान्ते सङ्कोचम्प्राप्ते सति । अनेन चन्द्रस्य अस्तगमनम् व्यज्यते । तथा च अरविन्दे पद्मे अरविन्दन्तु सूर्यविकासिकमलम् तस्मिन् असुविन्दे असुजीवनं तद्विन्दतिलभते । विदलृ लाभे इति धातो: अनुपलर्गाल्लिम्प विन्द • इत्यादिना श प्रत्यये "शे मुचा-दीनामिति नुमि उपपद समासे असुविन्द: जीवन लाभ: इति । तथा भूते सति विकसिते सती त्यर्थः । अनेन सूर्योदय: व्यज्यते । तथा च शकुनि निकरे पक्षि समूहे नीडोड्डीने नीडेभ्य: पक्षिवासकेभ्य: उड्डीने व्योम्नि गते । डीङ् विहा-यसा गतौ इति धातु: उदुपसर्ग पूर्वक: । तथा च तस्मिन् वाश्यमाने शब्द-ङ् कृत सति वाशृ शब्दे इति दिवादिगणीय: धातु: । तस्मात् शानचि । एवम्भूते सति सम्प्राप्ते प्रात: काले गान्धारज्ञा: गान्धार स्वर वेत्तार: वन्दिन, चारणा; रुचिर रचनैर्गीतै: सुललित पद गानै, तौ यक्षौ यक्ष: च यक्षिणीञ्च अबूबुधन् वारं वारं प्रत्यवोधयन् । अत्र यङन्त प्रयोगात् उभयोर्गाढनिद्रा व्यक्ता भवति । रात्रौ चिरकालजागरणात् प्रभातेऽपिनिद्रां न त्यजत: इति अभिप्राय; ।

ननु कुबेरानुचरस्य यक्षस्य गृहे कथं राजप्रासादवत् वन्दिन; प्राभातिकं गायन्ति चेत् । सम्यक् एतत् । तस्मात् यक्ष गृहात् समीप स्थिते एव कुबेर प्रसादे गीतानाम् स्वराणि अत्राऽपि श्रूयन्ते इति प्रथम: कल्प: । "तत्रा गारं धनपति गृहानुत्तरेणा स्मदीयम् दूराल्लक्ष्यं सुरपति धनुश्चारुणातोरणेन" इति श्लोके गृहान् इत्यत्र द्वितीयान्त प्रयोगात् उत्तरेणेत्यत्र एनप् प्रत्यय: । एन पा द्वितीये ति सूत्र बलात् उत्तरस्मिन् अदूरे इति अर्थ: । एवम् कुबेर गृहात् यक्ष गृहस्य सामीप्याम् । अथबा वाश्यमाना: पक्षिण: एव यथा गान्धारज्ञा: स्यु: इति वाचक लुप्ता उत्प्रेक्षा अत्र गम्या ।

हिन्दी—चन्द्रमा अस्ताचल चले गये; पूर्व दिशा में सूर्योदय हो गया; कुमुदिनी सङ्कुचित हो गई; कमल को जीवन लाभ हुआ, (कमल खिल गये) पक्षि गण घोंसलों से उड़कर चहचहाने लगे। ये सब होने पर गान्धार-स्वर को जानने वाले चारणों ने सुन्दर रचना वाले, गाये जाने वाले गीतों से उन दोनों को बार बार जगाया ।

प्रत्यावृत्ताः रमणसदनात् वेशदेशं सुकेश्यो
रात्रौ भुक्ताः कुवलयरुचो वारनार्योऽप्यनोभिः
संयुज्यन्ते रजनिवियुताश्चक्रवाकाः अपाकाः
प्रातः कृत्यं पटुनव वटून्दीक्षिताःशिक्षयन्ति ॥३०॥

अथ बन्दिनाम्मुखेन प्रातः कालं वर्णयति-प्रत्यावृत्तेति। सम्प्रतेऽस्मिन् प्रातः काले सुकेश्यः शोभनाः केशाः सन्त्यस्याः इति सुकेशी "स्वाङ्गच्चोपसर्जनादित्यादिना बिकल्पेन स्त्रियां ङीषि। ताः सुकेश्यः रात्रौ भुक्ताः रजन्यां कामिभिः पुरुषैः उपभुक्ताः कुवलयरुचः कुवलयमिव रुचिः शोभायासां ताः वारनार्यः वेश्याः अपि अनोभिः शकटैः "क्लीबेऽनःशकटोऽस्त्री स्यात्" इत्यमरः। रमण सदनात् भोक्तृणाम् पुरुषाणां गृहात् वेशदेशं वेश्यालयम् स्वगृहम् प्रत्यावृत्ताः परावर्तिताः सञ्जाताः रजनि वियुताः रात्रौ वियुक्ताः पृथक् पृथक् स्थिताः अपाकाः अप्सु अकतिचलति इति अपाकः ते जलचराः चक्रवाकाः चक्रवाकश्चचक्रवाकी चेति एकशेषे चक्रवाकौ ते। रात्रौ चकवाकाः मुनिशापात् वियुक्ताः तिष्ठन्तीति कवि समयः।

सम्प्रति प्रातः काले ते संयुज्यन्ते। परस्परं सम्मिलिताः भवन्ति। युजिर् योगे इति धातुः समुपसर्गपूर्वकः। तथा च दीक्षिताः कृतोपनयनसस्काराः पटुनववटून् चतुरान् नवान् शिष्यान् नवोपनीतान् इत्यर्थः। प्रातः कृत्यं सन्ध्यावन्दनादिकं कर्म शिक्षयन्ति पाठयन्ति।। इति।

हिन्दी—सुन्दर केशोंवाली, रात में भोगी गई, कुमुदिनी के समान सुन्दर बार वनिताएं गाड़ियों पर सुरतगृह से (कामी पुरुषों के गृह जहां वे सायङ्काल आई हुई थी) वेश्यालय लौट रही हैं। रात में वियुक्त जलचर चक्रबाक-युगल परस्पर मिल रहे है। दीक्षित (उपनीत) लोग नये नये कुशल शिष्यों को प्रातःकाल का कृत्य (सन्ध्या वन्दनादि) सिखा रहे हैं।

इत्युद्घुष्टे वचसि मधुरे कोकिलेनेवतेन
प्रीतौ प्रातर्जवजवममू जम्पती जागरित्वा।
स्मृत्वा देवङ्कमपि मनसा धर्मकामार्थ विज्ञौ
शय्योत्थायं शुभफलददानै क्षिषाताम् द्विजादीन् ॥३१॥

अथ यजस्य प्रातः कृत्यं बर्णयतिइत्युद्घुष्टे इति। कोकिलेन पिकेन इव तेन चारणेन जात्याख्यायामेकवचनमत्र विवक्षितम्। मधुरे वचसि वाण्या-

मिति—"दीक्षिता: शिक्षयन्तीति पूर्वश्लोकस्यावधारणार्थे इति शब्द:। उद्घुष्टे घोषणायाङ्कृतायां प्रात: प्रभाते प्रीतौ रजन्यां विविधप्रकारैः सम्भोगात् प्रसन्नौ अमू अल्पकालमेव सुप्तौ यक्षौ जम्पती दम्पती जायाशब्दस्य दम्जम् वा भावो निपात्यते राजदन्तादि गणे पाठात्। जवजवम् वेगादिति क्रिया विशेषणम्। वीप्सायाम् द्वित्वम्। जागरित्वा शयनादुत्थायं कमपि देवकञ्चिदपि स्वेष्टदेवम्। यद्वार्कं प्रजापतिमपि देवम्। अन्ते ब्रह्मण: पूजनम्भवतीत्युपचारात् अपि शब्देन ब्रह्मण: स्मरणकथनात् अन्त्यग्रहणे पूर्वाणामपि ग्रहणमिति लौकिकेन सर्वानपि देवान् स्मृत्वेति निगलितार्थ: मनसास्मृत्वा धर्मकामार्थ विज्ञौ पुरुषार्थत्रय वेत्तारौ मोक्षज्ञानन्तु वानप्रस्थिनां सन्यासिनाञ्च भवति। तौ शय्योत्थायं शय्याया:: शयनादुत्थायत्वरया "अपादाने परीप्सायामिति णमुल् प्रत्यये। नित्यकर्मणां कालमतिक्रान्तं वीक्ष्यत्वरया उत्थानम्—ब्राह्में मुहूर्ते उत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितमिति याज्ञवल्क्योक्ते:। शुभफलददान् दर्शनेनैव शुभफलदायकान् ददातीति दद: दाधातो: "ददातिदधात्योर्विभाषेतिश प्रत्यये। तस्मात् द्वितीया बहुवचने। द्विजादीन् ब्राह्मण-गुरु-मातापितृगवादीन् ऐक्षिषाताम् अपश्यताम्।

हिन्दी—इस प्रकार कोयल के समान मधुरस्वर में उस चारण (भाँट) के द्वारा शब्द करने पर उस यक्ष की जोड़ी (यक्ष–दम्पति) ने सुबह में प्रसन्नतापूर्वक झटपट जागकर धर्म अर्थ एवं काम इस पुरुषार्थत्रय के जानकार होने के कारण अपने इष्टदेव का स्मरण कर बिछौने से उतरकर शुभफलदायक ब्राह्मण गुरु गाय इत्यादि का दर्शन किया।

यक्ष: स्वच्छश्चरितनिचयै र्भीतभीतोऽपराधात्
मित्रैः सार्धन्त्वरितगमन: प्राणमद्राजराजम्।
सोऽपि प्रीत्या द्विगुणितमदात्कार्यभारं हि तस्मै
भव्यं लभ्यं किमिव न पुन: भाग्यभाजाञ्जनाम् ॥३२॥

अथ यक्षस्य कुबेरगृहगमनम् पुन: वृत्तिलाभञ्च वर्णयति-यक्ष: स्वच्छश्चरितनिचयैरिति। अपराधात् यस्मात् स्वाधिकारप्रमादात् स: अभिशप्त: बभूव तस्मात् भीतभीत: अपराधबोधात् त्रस्त: यद्वा अलकामागत्यापि दिनमेकमतिक्राम्य भर्त्तु: समीपगमनरूपादपराधात् इति। अतएव त्वरित गमन: शीघ्रगामी यक्ष: स्वच्छश्चरितनिचयै: निर्मलाचरणसङ्ग्रहै: मित्रै: राजद्वारादौ सहयोगिभिर्बान्धवै: : राजद्वारे श्मशाने च य: तिष्ठति स बान्धव: इति। न

तु अन्यैंमित्रैः सह इति विशेषणनिरूपितार्थः। चरितनिचये मित्रत्वारोप; । राजराजं कुवेरं प्राणमत् नमस्कारमकरोत्। सोऽपि कुवेरः अपि प्रीत्या प्रसन्नतया द्विगुणितम्पूर्वस्मात् द्विगुणम् भव्यम् प्रशस्त कार्यभारं कार्यसम्पानाय भारं वृत्ति नियोजनमिति भावः हि निश्चयेन अदात् प्रदत्तवान्। सत्यमेव यत् भाग्यभाजाञ्जनानाम् ऐश्वर्यवताम्मनुष्याणाम् किमिव न पुनर्लभ्यम् प्राप्यम् भवति इति शेषः।

सामान्येन विशेषस्य समर्थन दत्र अर्थान्तरन्यासालङ्कारः। स्वच्छश्चरित निचये मित्रत्वारोपात् रूपकालङ्कारः

हिन्दी—अपराध से डरा हुआ किन्तु निर्मल चरित्र रूपी मित्रों के साथ शीघ्रता से जाकर यक्ष ने कुवेर को प्रणाम किया। उन्होंने भी उसे (यक्ष को) प्रसन्न होकर दुगुना प्रशस्त कार्यभार सौंपा। भाग्यवान व्यक्ति को पुनः क्या नहीं प्राप्त हो सकता !!

इत्थं स्वस्थावनवरतमारभ्य भूभृत्प्रदेशात्
प्रासादान्तम्पुरिपुरि पुनर्दम्पती सम्प्रतीत्वा।
स्वस्वोन्नीत्तोद्धतनिधुवनैर्लब्धसर्वोद्धवौ तौ
संक्रीडेतेस्म रसजनकैर्देश्य[1] केलीकलापैः ॥३३॥

इत्थं स्वस्थाविति। सम्प्रति अधुनावृत्तिलाभादनन्तर एव प्रकारेण अनवरतं सततं स्वस्थौ स्वस्मिन् स्थितौ गार्हस्थ्य धर्म पालनतत्परौ। यक्षस्य स्वत्व-निर्धारनन्तु कालिदासेनोत्तरमेघे कृतम् अलका वर्णन प्रसङ्गे। अथवा रूढितः आपन्मुक्तौ इत्यर्थः। तौ यक्षौ दम्पती यक्षश्च यक्षिणी च भूभृत्प्रदेशात् कौवेर प्रासादादरभ्य प्रासादान्त स्वप्रासाद पर्यन्तम् इत्वा गत्वा। कौवेर प्रासादे पुरुषार्थत्रयेषु गार्हस्थ्ये प्राप्तव्येषु अर्थलाभः, स्वप्रासादे च धर्मकामयोर्लाभः। अतएव उभयत्र गत्वा इति। पुरि-पुरि नगरे-नगरे पुनः स्वस्वोन्नीतोद्धत निधुवनैः स्व स्वर्तार्कितैः उद्धत निधुवनैः कठोर सम्भोगैः "व्यवायो ग्राम्यधर्मो मैथुन निधुवनं रतम्" इत्यमरः। तैः च रस जनकैः आनन्दोत्पादकैः देश्यकेली कलापैः ग्राम्यक्रीडा सहितैः सहकार भञ्जिकाऽभ्यूषादिभिः क्रीडाभिः। केलि इति क्रीडार्थकम्पदम् दीर्घान्तमपि प्राप्यते। यथा 'केलीषु तद्गान गुणान्निपीय' इति नैषधे। लब्धसर्वोद्धवौतौ लब्धः सर्वउद्धवः दुःख निरोधः उत्सवः याभ्याम् तौ यक्षौ सक्रीडते स्म खेलतः स्म।

टिप्पणी—१. सहकारभञ्जिकाऽभ्यूषखादिका प्रभृतयोदेश्यः क्रीडाः वात्स्यायने-नोक्ताः साधारणाधिकरणे।

हिन्दी—इस प्रकार दोनों पति पत्नी सतत स्वस्थ होकर (अपनी दिन-चर्या में लगकर) कुबेर के प्रासाद से अपने महल तक आकर नगर-नगर में अपनी इच्छा से रसोत्पादक ग्राम्यक्रीडाओं से तथा उद्धत सम्भोगों से सभी प्रकार के दुःखों को भुलाकर (सभी प्रकार के उत्सवों को पाकर) खेलते रहे।

वारं वारं रुचिरसरसीस्थानमेत्यात्यवित्तं
क्रीडन्तौ तौ दिनगणमिवोत्कीर्णरेणुकरेणू।
अल्पादल्पो भवति विषमः कल्पकल्पोहि कालः
सङ्कल्पाप्तः शमयसमयो ह्रस्यते द्राघितोऽपि ॥३४॥

वारं वारमिति। वार वारं पुनः पुनः तौ यक्षौ दम्पती उत्कीर्णरेणू उत्कीर्यन्ते विक्षिप्यन्ते रेणवः रजांसियाभ्याम् तौ करेणू इव "करेणुः गजः करेणुर्गजयोषायाम् स्त्रियां पुंसिमतङ्गजे" इति मेदिनी। एकशेषात् द्विवंचनम्। एतेन गजस्य वप्रक्रीडा वर्णिता। राजदम्पती इव इत्यर्थः। अत्यवित्तम् अत्यज्ञातम्। "वित्तोभोग प्रत्यययोः" इति पाणिनिः। लाभार्थकात् विद्लृ धातोःक्त प्रत्यये निपातनात् साधुत्वम्। अन्यथा रदाभ्याम् इत्यदिना विन्नमितिस्यात्। अनेन स्थानस्य निर्जनत्वमुद्दीपनं द्योत्यते। यक्ष पक्षे अभुक्तम्। सर्वथा नवीनतरमिति भावः रुचिर सरसी स्थानं सुन्दर जलाशयस्थलम् यक्ष पक्षे-रुचिरेण सुन्दरेण रसेन श्रृङ्गारेण सहित स्थानम् एत्य आगत्य प्राप्य इति भावः दिनगण दिनसमूहम् "कालाध्वनोरत्यन्त सयोगे इति द्वितीया तया तृप्तिरूपफलस्य अप्राप्तिः गम्यते अन्यथा तृतीयास्यात्। क्रीडन्तौ खेलन्तौ आस्तामिति शेषः।

हि यतः विषमः कष्टमयः अल्पादल्पोऽपि कल्पकल्पोऽनन्त्यो भवति। सकल्पाप्तः सङ्कल्पेन मनोभिलषितेन दृढनिश्चयेन प्राप्तः द्राघितोऽपि शमय समयः कल्याणमयः कालः ह्रस्यते लघु भवति।

सामान्येन विशेषस्य समर्थनादत्र अर्थान्तरन्यासालङ्कारः। श्लेषानुप्राणितोपमालङ्कारश्च।

हिन्दी—वे दोनों पति पत्नी धूल उधेड़नेवाले गज दम्पती के समान अप्रसिद्ध (यक्ष पक्ष में न भोगा गया अर्थात् नवीनतर) एवं सुन्दर जल से पूर्णजलाशय (यक्ष पक्ष में रूचिपूर्ण श्रृङ्गार रससे युक्त भोग स्थान) पर आकर (अर्थात् सभी भोगों को पाकर) खेलते हुए पूरे दिन को विताने लगे। ठीक

ही है, कष्ट का थोड़ा समय भी कल्प के समान लगता है, जबकि सङ्कल्प से प्राप्त सुख से बड़ा से बड़ा काल भी छोटा ही मालूम पड़ता है।

माऽस्याकारे कुरुत कृतिनो दृक् प्रसारङ्कथञ्चिद्-
गृह्णीताग्र्यं रसगुणममुं यो न लभ्यो बहुत्र।
प्रेक्ष्यं पक्वं सुललितफलं विम्बकं तुण्डिकेर्या-
स्त्यक्त्वा विज्ञास्तलितसरसं पत्रमास्वादयन्ति ॥३५॥

यक्षसमागममिति काव्यस्यान्ते कविः स्वकीयकाव्यविषये प्ररोचनां विधातुं: कथयति-माऽस्याकार इति। हे कृतिनः विद्वांसः अस्य काव्यस्य यक्षसमागममिति नामधेयस्य आकारे स्वरूपे लघुत्वे कथञ्चित् दृक्प्रसार नेत्रस्फारीकरणम् मा कुरुत। काव्यस्य लघुत्वं विद्वद्भिः नोपहसनीयम् इति भावः। अमुम् अग्र्य अग्रे भवं मुख्यं रसगुणं विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगान्निष्पन्नं काव्यरसं शृङ्गारमित्यर्थः गृह्णीत ग्रहणेनास्वादयत। यः शृङ्गाररसगुणः बहुत्र बहुषु न लभ्यः प्राप्यः। यतोहि प्रेक्ष्यं दर्शनीयं पक्वं रक्तीभूतं सुललितं सुन्दरं तुण्डिकेर्याः बिम्बिकायाः "तुण्डिकेरी रक्तफला बिम्बिका पीलुपर्ण्यपि"। 'तिलकोर' इति मैथिली भाषायाम्। अस्याःफलम् तिक्तं भवति। तं फलं त्यक्त्वा विज्ञाः तलितं प्रतिष्ठितम् तैले संस्कृतम् च तत् सरसं आस्वाद्यं पत्रमास्वादयन्ति।

अर्थान्तरन्यासालङ्कारः।

हिन्दी—इस काव्य के आकार के सम्बन्ध में विद्वान् किसी तरह आँखें न तड़ेड़ें। इस मुख्य रस शृङ्गार का आश्वादन करें जो हर जगह उपलब्ध नहीं होता। क्योंकि बुद्धिमान लोग तिलकोर के पके फल को छोड़कर प्रसिद्ध अथवा तले गये पत्ते का आस्वादन करते हैं।

इति कविकुलाङ्कुरण-महावैयाकरण (महामहोपाध्याय) श्री परमेश्वरशर्म विरचित 'यक्ष-समागम' काव्यम् समाप्तम्।

—:०:—

अकारादि क्रमेण श्लोकानुक्रमणिका

यक्ष समागमस्थ सूक्तयः

१. स्वस्या चाराद्व्रजति हि जनो गर्हणाकर्हणां वा ॥१४॥
२. चौरङ्कारं चिकुरनिकर पृष्ठवन्धं वधान ॥१६॥
३. किं श्रमैः स्यात्तिरश्चाम् ॥२२॥
४. हाऽन्धी भावं भजति हि जने गर्वतो गौरनारी ॥२५॥
५. भवति हि सुहृ त्सद्विधौ सर्व एव ॥२८॥
६. भव्य लभ्यं किमिवन पुनर्भाग्यभाजाञ्जनानाम् ॥३२॥
७. अल्पादल्पो भवति विषमः कल्प कल्पो हि कालः ॥३४॥
८. सङ्कल्पाप्तः शमय-समयो ह्रस्यते द्राधितोऽपि ॥३४॥
९. प्रेक्ष्यं पक्वं सुललित फलंबिम्बकं तुण्डिकेर्याः
स्त्यक्त्वा विज्ञास्तलित सरसं पत्र मास्वादयन्ति ॥३५॥